प्रेरक प्रसंग

महापुरुषों के जीवन से जुड़े अनमोल प्रेरणादायी प्रसंगों का अनूठा संग्रह

-: प्रकाशक :-

अद्वैत स्वरूप आश्रम

परमार्थ सेवा सदन, तुपुदाना

हटिया राँची - ३ (झारखण्ड)

Composed By

Kapish Kumar

क्रोध पर विजय

संत एकनाथ किसी पर क्रोध नहीं करने के लिए प्रसिद्ध थे। सभी लोग उनकी सहनशीलता और विनम्रता की प्रशंसा किया करत थे। एक दिन कुछ विरोधियों ने उन्हें क्रुद्ध करने को सोचा। इसके लिए उन्होंने एक दुष्ट व्यक्ति को चुना और उन्हें सन्त एकनाथ जी को क्रुद्ध कर देने के लिए रुपयों का लालच दिया।

एकनाथ जी भजन कर रहे थे तभी वह दुष्ट आया। उनके कन्धे पर चढ़कर वह उनका ध्यान भंग करने लगा। एकनाथ जी आँखें खोलते हुए बोले, 'बन्धु! आपके जैसी आत्मीयता दिखानेवाला कोई भी अतिथि आज तक नहीं आये। बड़ी कृपा की जो आज आप आए। आज आपको बिना भोजन कराये जाने नहीं दूँगा।'

यह सुनकर वह शर्म के मारे उनके चरणों में गिर पड़ा और सचमुच ही उन्होंने उसे प्रेमपूर्वक भोजन करवाकर भेजा।

जरा–व्याधि–मृत्यु

एक बार गौतम बुद्ध अपने सारथी के साथ चुपके से नगर–भ्रमण के लिए निकले। रास्ते में उन्हें एक खाँसता हुआ आदमी दिखाई पड़ा। उन्होंने सारथी से पूछा –'इसे क्या हो गया है?'

सारथी बोला – 'यह रोगी आदमी है, इसे खाँसने की बिमारी हो गई है।'

सिद्धार्थ ने पुनः पूछा– 'यह रोग क्या है? आदमी रोगी क्यों हो जाता है?'

सारथी बोला – 'जब आदमी युवावस्था को पार कर जाता है तब वह क्षीणकाय हो जाता है। उसमें तरह–तरह की बीमारियाँ हो जाती हैं।' कुछ दूर चलने के बाद उन्हें एक झुका हुआ आदमी दिखाई पड़ा। उन्होंने सारथी से पूछा – 'यह आदमी झुककर क्यों चल रहा है?'

सारथी बोला – 'जब आदमी वृद्धावस्था को प्राप्त होता हो जाता है तो उसका शरीर झुक जाता है। हाथ–पैर काम नहीं करते। उसे लाठी के सहारे चलना पड़ता है।'

कुछ और आगे चलने पर उन्होंने कुछ आदमी को खाट पर एक मृत व्यक्ति को ले जाते देखा। उन्होंने सारथी से पूछा – 'ये लोग इस सोये हुए आदमी को ऐसे क्यों ले जा रहे हैं?'

सारथी बोला – 'यह मर गया है ।'

सिद्धार्थ ने पूछा – 'ये मरना क्या बला है?'

सारथी बोला– 'वृद्धावस्था के बाद आदमी मर जाता है। उसकी सारी शारीरिक क्रियायें स्तब्ध हो जाती हैं।'

मनुष्य की जरा, व्याधि और मृत्यु की अवस्था को देखकर उनका मन दुःखी हो उठा। उन्होंने सोचा कि जब सबकुछ प्राप्त करने के बाद भी आदमी मर ही जाता है तो क्यों न उस परम सत्ता को प्राप्त किया जाय जिसे प्राप्त कर लेने के बाद कुछ पाना बाकी नहीं रह जाता। जरा–व्याधि–मृत्यु के उस पार जो अमृत का पथ है उसे ही क्यों न ढूँढा जाय। ऐसा सोच उन्होंने गृह–त्याग का संकल्प लिया।

स्वामी राम अपने गाँव के एक ठठेरे से दीक्षित थे। लाहौर में जब बहुत आग्रहपूर्वक स्वामी विवेकानन्द को अपने यहाँ बुला लाये तो किसी ने कहा कि जगत्विख्यात स्वामी विवेकानन्द को अपना गुरु बना लीजिए। स्वामी राम ने कहा ''बिका हुआ माल क्या बिकेगा? क्या एक स्त्री अपने पति को इसलिए छोड़ दे कि उसे दूसरा ज्यादा धनवान सुन्दर पति मिल गया है? यह बाजारू इश्क नहीं, जीवन का सौदा है। शिष्य और हरजाई! बेहतर होता कि वैसा शिष्य कहलाने के बजाय मर जाता !'

भिक्षा का प्रताप

एक बार समर्थ गुरु रामदास जी एक घर के द्वार पर खड़े होकर 'जय-जय श्री रघुवीर समर्थ' का उद्‌घोष किया। गृहिणी का अपने पति से कुछ देर पूर्व कुछ कहा-सुनी हुई थी, जिससे वह गुस्से में थी। बाहर आकर चिल्लाकर बोली – 'तुम लोगों को भीख माँगने के सिवा और कुछ दूसरा काम नहीं है? मुफ्त मिल जाता है, अतः चले आते हो। जाओ, कोई दूसरा घर ढूँढ़ो, मेरे पास अभी कुछ नहीं है।'

श्री समर्थ हँसकर बोले – 'माताजी ! मैं खाली हाथ किसी द्वार से वापस नहीं जाता। कुछ न कुछ तो लूँगा ही।'

वह गृहिणी उस समय चूल्हा लीप रही थी। गुस्से में आकर उसने उसी लीपनेवाले कपड़े को उनकी तरफ फेंक दिया।'

श्री समर्थ प्रसन्न हो वहाँ से निकले। उन्होंने उस कपड़े को पानी से साफ किया और बत्तियाँ बनायीं और उसी से प्रभु श्रीराम की आरती करने लगे। इधर ज्यों-ज्यों उन बत्तियों से आरती होती त्यों-त्यों उसका दिल पसीजने लगा। उसे उनके अपमान करने का इतना रंज हुआ कि वह विक्षिप्त हो उनको खोजने के लिए दौड़ पड़ी। अंत में वे उसे उस देवालय में मिले जिसमें वे उन बत्तियों से आरती करते थे। वहाँ पहुँचकर उसने श्री समर्थ से क्षमा माँगी और बोली – 'महात्मन्, व्यर्थ ही मैंने आप सरीखे महापुरुष का निरादर किया। मुझे क्षमा करें।'

श्री समर्थ बोले – 'माता ! तुमने उचित ही भिक्षा दी थी। तुम्हारी भिक्षा के प्रताप से ही यह देवालय प्रज्ज्वलित हो उठा है। तुम्हारा दिया हुआ भोजन तो जल्द ही खत्म हो जाता।'

नयी तालीम

विनोबा जी के आश्रम में एक लड़का था जिसको बीड़ी पीने की लत पड़ गयी थी। आश्रम में बीड़ी पी नहीं सकते, तम्बाकू खा नहीं सकते और दूसरे व्यसन भी नहीं कर सकते, इस नियम की उसे जानकारी थी फिर भी वह चुपचाप बीड़ी पीता रहता था।

एक दिन एक आश्रमवासी ने उस लड़के को छिपकर बीड़ी पीते हुए देख लिया। वह लड़का घबड़ा गया। विनोबा के प्रति उसके मन में भक्ति थी, इसलिए वह विनोबा के पास गया। विनोबा ने कहा – ' बेटा, घबराना नहीं। बड़े-बड़े लोग भी बीड़ी पीते हैं, तुमने गलती यह की है कि चोरी-छिपे पी है। अब मैं तुम्हें एक अलग कोठरी देता हूँ और बीड़ी का बंडल मँगा देता हूँ। जब कभी बीड़ी पीने की इच्छा हो तब मुझसे माँगकर उस कोठरी में जाकर बीड़ी पी लिया करो।'

आश्रमवासियों को यह बात विचित्र लगी। वे कहने लगे – 'उसकी आदत छुड़ाने की बात तो दूर रही ऊपर से उसको बीड़ी पिलाने की व्यवस्था कर रहे हैं आप ?'

विनोबा ने कहा – ''भाइयो, बीड़ी पीना खराब है। परन्तु उसकी आदत पड़ गयी है इसलिए उसको चोरी-छिपे पीनी पड़ती है। यह तो और भी खराब बात है। वह खुलेआम बीड़ी पीये, यह भी ठीक नहीं है। इसलिए उसको आदत छोड़ने का मौका देना चाहिए। यह अहिंसा का विचार है। अहिंसा की विशेषता यह है कि उसमें दूसरे के दोषों को सहन करने की शक्ति प्रकट करनी होती है। ऐसे प्रसंग पर मन में उदारता और सहानुभूति का रुख रखना चाहिए। हाँ, इतना आग्रह जरूर रखें कि उससे दूसरों का नुकसान न हो, भोग-विलास न बढ़े।'

आज भी आश्रम की बही में उस बीड़ी के बण्डल का खर्च और विवरण लिखा हुआ मिलेगा।

समय का दुरुपयोग कब ?

विनोबा के असली दाँत टूट चुके थे, नकली दाँत लगाये थे। वे रोज अपने हाथ से दाँतों को धोते थे। उसमें पन्द्रह मिनट सहज ही लग जाते थे। एक बार जानकी देवी ने विनोबा से कहा – 'आपके पन्द्रह मूल्यवान मिनट दाँत धोने में लगते हैं। यह ठीक नहीं है! किसी दूसरे को यह काम क्यों नहीं सौंप देते ? नाहक का 'वेस्ट ऑफ टाइम' (समय का दुरुपयोग) होता है।'

विनोबा ने कहा – 'हाथ-पैर से कोई काम करने में 'वेस्ट ऑफ टाइम' नहीं है। 'वेस्ट ऑफ टाइम' तो जिन क्षणों में हमारे मन में काम-क्रोध आदि विकार पैदा हों, उसमें है। उस वक्त समझ लो कि उतना समय व्यर्थ गया। बाकी शुद्ध मन से कोई भी काम करने में समय व्यर्थ नहीं जाता।'

सच्चा परिव्राजक

एक बार गौतम बुद्ध के शिष्य वाणिक ने उनसे सुरापरान्त नामक प्रान्त में धर्म–प्रचार की आज्ञा माँगी। वाणिक से बुद्ध ने पूछा – 'अच्छा सुरापरान्त! लोग कठोर वचनों का प्रयोग करेंगे तो तुम्हें कैसा लगेगा?'

'मैं समझूँगा कि वे भले हैं, क्योंकि उन्होंने मुझ पर हाथ नहीं उठाया', जवाब मिला।

'यदि उनमें से किसी ने तुझपर धूल फेंके और थप्पड़ लगाया तो ?', बुद्ध ने पूछा।

'मैं भला समझूँगा कि उन्होंने मेरे ऊपर डंडों का तो प्रयोग नहीं किया', शिष्य बोला।

'डंडे मारनेवाले भी दस–पाँच मनुष्य मिल सकते हैं', बुद्ध बोले।

'मैं समझूँगा कि वे भले हैं, क्योंकि शस्त्र चलाकर प्राण तो नहीं लेते', शिष्य ने जवाब दिया।

'यदि वे तुम्हारे प्राण लें ले तब ?', गुरुदेव ने कहा।

'मौत तो टाली नहीं जा सकती। मैं न तो मौत को न्योता देकर बुलाऊँगा और न उसे टालने के लिए परेशान होऊँगा', शिष्य का उत्तर मिला।

शिष्य वाणिक की बात सुनकर बुद्धदेव बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले – 'अब तुम पर्यटन के योग्य हो गये हो। सच्चा साधु वही है जो कभी किसी दशा में किसी को बुरा नहीं कहता। जो सबका भला चाहता है वही परिव्राजक होने योग्य है।'

धन्यवाद के अधिकारी

एक बार संत एकनाथ वे गोदावरी से स्नान करके लौट रहे थे। गली में एक मुसलमान रहता था जो हिंदू साधुओं को बड़ा तंग किया करता था। उसने एकनाथ जी पर कुल्ला कर दिया। वे चुपचाप रहे और पुनः स्नान करने को चले गये। स्नान करने के पश्चात् उसने पुनः उन पर कुल्ला कर दिया। इस बार भी वे चुपचाप पुनः स्नान करने को चले गये। इसी तरह उसने उन पर 108 बार कुल्ला किया और एकनाथ जी उतनी ही बार गोदावरी में स्नान करने को गये। इतने पर भी उनके मुख पर कोई प्रतिक्रया का कोई भाव या क्रोध नहीं था। अंत में उसने अपनी हार स्वीकार कर ली और चरणों में गिरकर माफी माँगने लगा। एकनाथ जी ने उन्हें गले लगाते हुए कहा – 'कोई बात नहीं। तुम्हारे कारण तो आज मुझे 108 बार गोदावरी में स्नान करने का पुण्य प्राप्त हुआ। तुम तो धन्यवाद देने के अधिकारी हो।'

सप्त सरोवर स्थित स्वामी सत्यमित्रानन्द जी महाराज के पाण्डाल में संत सम्मेलन हो रहा था। पाण्डाल गैरिक वस्त्रधारी साधुओं से भरा था। मंच पर भी दर्जनों महात्मागण विराजमान थे। सबसे आगे ही परमार्थ निकेतन ऋषिकेश के वयोवृद्ध आत्मनिष्ठ संत स्वामी भजनानन्द सरस्वती जी महाराज को बिठाया गया था।

कुछ कहने के लिए उनकी ओर माइक बढ़ाया गया। इस बनावट भरी दुनिया में वे परम विरक्त महापुरुष चुपचाप बैठे थे। टाँगों का कपड़ा भी हटा हुआ था। अति वृद्ध तो थे ही। माइक देखकर बोल पड़े–'सत्यमित्रानन्द, क्या कहूँ मैं ? तुमलोग अंग्रजी पढ़े साधु हो। नयी उम्र के हो। तुम्हीं बोलो। मुझे कुछ नहीं कहना है।'

नहीं–नहीं कहते–कहते वे सामने बैठे लोगों की ओर देखते हुए बोल पड़े – 'सुननेवाले भी तो हों ? आजकल श्रोता कहाँ कोई होता है। श्रोता को सरल, सुशील और शुचि हृदयवाला होना चाहिए। पात्र नहीं होगा तो अमृत कहाँ टिकेगा। सात्विक सम्पदावाला ही सत्संग सुनकर उसकी धारणा कर सकता है।'

अब ये बच्चियाँ आयी हैं सुनने। बताओ, बिंदिया लगाकर, होठ रंगकर, चिट–मिट कपड़े पहनकर साधु दर्शन और सत्संग सुनने के लिए आयी हैं ये। क्या मिलेगा इन्हें ? देह की साज–सज्जावाले लोग देहातीत सिद्धान्तों को कहाँ समझ पायेंगे !

वैसा कहते–कहते सामान्य बोलचाल में वे गीता के आत्मा के अमरत्व तथा देह की नश्वरता पर बड़ा ही मार्मिक उपदेश कर गये। आधे घंटे में सबकुछ कह गये वे।

फिर एकाएक माइक हटाकर बोले – 'लो, मुझे कुछ कहना नहीं है। तुम्हीं लोग सुनाओ इन्हें।'

शास्त्र तो उन महापुरुषों के जीवन में मानो मूर्त हुआ था।

विचार में समझौता नहीं

विनोबा जी के आश्रम में एक बार एक राजनीतिक नेता आए थे, जो विनोबा के परम मित्र थे। वे चुनाव में खड़े होनेवाले थे किन्तु उनके और विनोबा के विचार में बहुत मतभेद था।

उनके साथ चर्चा करते हुए विनोबा ने कहा – 'आपके प्रति मुझे बहुत प्रेम है, इसलिए मैं आपके लिए जान भी दे सकता हूँ। परन्तु आपको मैं अपना मत नहीं दे सकता; क्योंकि आपके विचार मुझे जँचते नहीं। हम एक ही आश्रम में रह सकते हैं, परन्तु जबतक हमारे विचारों में अन्तर है तबतक लोगों से मैं यही कहता रहूँगा कि यह मेरा मित्र जरूर है, परन्तु इसे वोट नहीं देना; क्योंकि इसके विचारों में दोष है। आप भी, जो लोग मेरे विचार के हों उनके बारे में यही कहिये कि इन विचारों में दोष है। फिर लोग इच्छानुसार जिसको चुनना होगा, चुनेंगे और जो चुनकर आयेगा वह सरकार में जाकर जनता की सेवा करेगा और जो चुनकर नहीं आयेगा, वह सीधा जनता में जाकर सेवा करेगा।'

मन को शुद्ध करो

एक बार श्री समर्थ रामदास जी भिक्षा माँगते हुए एक घर के सामने खड़े हुए और उन्होंने आवाज लगायी– 'जय–जय श्री रघुवीर समर्थ।' घर की स्त्री बाहर आयी। उनकी झोली में भिक्षा डालती हुई वह बोली– 'महाराज, कोई उपदेश कीजिये।'

स्वामी जी बोले – 'आज नहीं, कल दूँगा।'

दूसरे दिन वे पुनः उसके घर पर गये। गृहिणी ने उस दिन खीर बनाया था। वह खीर का कटोरा बाहर लेकर आयी। स्वामी जी ने अपना कमण्डल आगे कर दिया। वह स्त्री जब खीर डालने को आगे हुई तो उसने देखा कि कमण्डल में गोबर भरा हुआ है। वह बोली – 'महाराज, यह कमण्डल तो गंदा है।'

स्वामी जी बोले – 'हाँ गन्दा तो है, परन्तु तुम उसी में खीर डाल दो।'

वह स्त्री बोली – 'परन्तु तब तो खीर खराब हो जायेगी, इसीलिए दीजिये यह कमण्डल, मैं इसे साफ कर देती हूँ।'

स्वामी जी बोले – 'अर्थात् कमण्डल जब साफ हो जायेगा तभी तुम इसमें खीर डालोगी?'

स्त्री ने उत्तर दिया – 'जी महाराज !'

स्वामी जी बोले – 'तो मेरा भी यही उपदेश है। मन में जबतक संसार की वासनाओं और विषय–लालसा का गोबर भरा है तबतक उपदेशामृत का कोई लाभ नहीं होगा। यदि लाभ पाना है तो पहले अपने मन को शुद्ध करना होगा, विषयों के प्रति उदासीनता लानी होगी तभी तुम्हारा कल्याण हो सकता है।'

किसी गाँव में एक संत आये। रात्रिकाल में कुछ ग्रामीण उनके निकट सत्संगलाभ करने के लिए इकट्ठे हुए। महात्मा ने सत्संग में कहा कि भगवान सबके रक्षक हैं। उनका नाम विश्वम्भर है। वे ही सबका भरण–पोषण करते हैं। श्रोताओं में से एक ने शंका उठाते हुए कहा – 'महात्मन्, भगवान सबको कैसे दाना–पानी देते हैं? हम न खायें तो क्या वे आकर खिलायेंगे?' 'हाँ, वे चाहें तो जबरन भी खिला सकते हैं,' महात्मा ने विश्वासपूर्वक कहा। उस व्यक्ति को महात्मा के कथन की सत्यता को परखने की जिद्द हो आयी। वह जंगल में चला गया और एक पेड़ की डाली पर चढ़कर बैठ गया। उसने प्रण किया कि देखें भगवान मुझे कैसे यहाँ जबरन खिलाते हैं।

उधर से कुछ बाराती गुजर रहे थे। उन्होंने उस पेड़ के नीचे बैठकर खाने को सोचा। खाने का सामान उनके साथ था। वे अभी खाने ही लगे थे कि जंगल से शेर की दहाड़ सुनाई पड़ी। जान की रक्षा में वे सभी इधर–उधर भाग खड़े हुए। उन्होंने खाना वहीं छोड़ दिया। वह आदमी ऊपर से भोजन को देखता रहा पर उसकी तो प्रतिज्ञा थी कि खिलानेवाला ऊपर लाकर मुझे जबरन खिलायेगा तब भी मैं नहीं खाऊँगा। रात हो गयी। कुछ चोर चोरी करने के उद्देश्य से चलते–चलते वहीं रुक गये। उन्होंने भोजन पड़ा देखा तो अपना भाग्य सराहा।

वे खाने ही लगे थे कि उनमें से किसी ने चौंककर कहा – 'इस निर्जन वन में भोजन का पड़ा होना शंका का विषय है। कहीं कोई छिपा न हो और इसमें विष न मिला रखा हो। अतः पहले इधर-उधर देख लेना चाहिए।' उन्होंने टॉर्च की रौशनी से ऊपर देखा तो वह आदमी बैठा मिल गया। उसे उन्होंने नीचे उतारा। उसकी लाख सफाई देने के बाद भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ और तय किया कि यह खाना उसे ही खिलाया जाये। विष होगा तो वही तो मरेगा। वह इधर-उधर मुँह करता रहा पर वे भला कब माननेवाले थे। उन्होंने दो-चार तमाचे लगाये और पकड़कर जबरन उसके मुँह में पूड़ियाँ घुसेड़नी शुरु कर दीं। मार खाकर बेचारा खाने लग पड़ा और उसका मन मान गया कि भगवान चाहे तो जबरन भी खिला सकता है। उसे संतों के उपदेशों की सत्यता प्रमाणित हो गयी। वह पूर्ण ईश्वरनिर्भर भक्त बन गया। अपने देह-गेह की परवाह छोड़कर अहर्निश भगवान के भक्ति-पूजन में मग्न रहने लगा। उच्च भक्ति-भावना से उसका जीवन दिव्य हो गया। वही व्यक्ति 'मलूकदास' के नाम से विख्यात हुआ जिन्होंने अपनें पदों में गाया –

'अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम।
दास मलूका कहि गये सबके दाता राम।।'

दया-भाव

एक बार संत एकनाथ जी काशी से रामेश्वरम् की यात्रा कर रहे थे। उस समय गर्मी का दिन था। आस-पास पानी मिलना मुश्किल था। उन्होंने देखा कि एक गधा प्यास से तड़प रहा था। उसे देखकर उन्हें दया आई और अपनी कमंडलु का पानी, जिसे वे रामेश्वरम् में भगवान शिव जी को चढ़ाने के लिए ले जा रहे थे, उस प्यासे गधे को पिला दिया। गधे की छटपटाहट शांत हो गयी।

यह देखकर उनके शिष्यों ने उनसे कहा, 'यह आपने क्या कर दिया, अब भगवान शिव को जल कैसे चढ़ायेंगे? काशी से आप कितनी मुश्किल से गंगाजल भरकर यात्रा पर निकले थे। अब इस गर्मी के दिनों में पानी मिलना मुश्किल है।'

एकनाथ जी ने कहा, 'अरे ! ये क्या तुमलोग मूर्खों जैसी बातें कर रहे हो? क्या तुमने नहीं देखा कि साक्षात् भगवान शिव ही तो गधे के रूप में यहाँ पधारे थे। कितने कृपालु हैं वे ! स्वयं ही आ गये। हमें वहाँ जाने का कष्ट भी उठाने नहीं दिया।'

फकीरों की दुनिया

एक अवधूत महात्मा छः दिनों के भूखे थे। श्मशान में पिण्डदान के आटे को इकट्ठा करके उन्होंने चार टिक्कड़ बनाये थे और उन्हें चिता की आग पर रखा था। उनकी दशा देखकर पार्वती ने महादेव से कहा – 'आर्य, आप कैसे निष्ठुर हैं भला! कहते हैं कि विश्व भर का मैं भरण–पोषण करता हूँ और आपके आश्रित, बेचारे इस फकीर की यह दशा है! क्या इसकी ओर आपकी निगाह कभी नहीं गयी ! देखिये न, छः दिनों का भूखा यह महात्मा श्मशान में पिण्डदान का आटा इकट्ठा करके उसे चिता की आग में पका रहा है!'

भगवान शंकर कहने लगे – 'पार्वती! ऐसे परम विरक्त महात्मा के लिए भी क्या कुछ कमी है? यदि वह चाहे तो ऋद्धि–सिद्धियाँ उसकी सेवा में भेज दी जायें, इहलोक–परलोक का कुल वैभव उस पर वार दिया जाये। पर क्या कहें ऐसे अवधूत की, यह चाहता ही कुछ नहीं।'

पार्वती को जैसे विश्वास नहीं हुआ। बोलीं – 'आप भी अजीब–सी बात करते हैं। बेचारा भूख के मारे बेचैन है, कुछ चाहता कैसे नहीं?'

भगवान ने कहा – 'विश्वास नहीं तो जाकर आजमा लो। तुम भी तो सबकुछ दे ही सकती हो। यदि कुछ लेना चाहे तो जाकर दे दो।'

आजमाइश के लिए माता एक बुढ़िया बनकर भीक्षा माँगतीं हुई सामने पहुँचीं।

बोलीं – 'बेटा, सात दिनों की भूखी हूँ, कुछ खाने को दो।'

महात्मा ने सोचा कि यह बुढ़िया हमसे भी ज्यादा भूखी है, इसलिए पहले इसका पेट भरना चाहिए।' उन्होंने अपने तीन टिक्कड़ दे डाले।

बोलीं – 'बच्चे भी हैं, इतने से क्या होगा भला?'

महात्मा ने चौथा टिक्कड़ भी फेंक दिया – 'लो, ले जाओ' और स्वयं अपनी मस्ती का भजन गाता हुआ उधर से विमुख हो गया। वह बुढ़िया पार्वती के रूप में प्रकट हो गई।

बोलीं – 'बेटा! तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

अवधूत महात्मा ने कहा – 'अभी तो तुम भिखारिन बनी थी, अब देनेवाली बन गईं। जा, जा, मुझे कुछ नहीं चाहिए। तू क्या हमें देगी?'

माता जी बोलीं – 'बेटा, तुम्हें बिना कुछ दिये जी को संतोष नहीं होता। अवश्य ही कुछ माँगो।'

फकीर बोला – 'मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है, माँगूँ क्या? जा, तू उसे कुछ दे जिसे जरूरत हो।'

माता ने पुनः–पुनः आग्रह किया – 'बेटा, तू जरूर कुछ माँग ले और मेरे हृदय का बोझ हल्का होने दे। तू जो चीज माँगेगा, अवश्य दूँगी।'

पार्वती के बार–बार कहने से उकताकर फकीर ने कहा –'जा, यदि देना ही है तो यही दे कि अभी तो कुछ दिन ही खाने का नहीं मिला है यदि छः महीने भी कुछ खाने को न मिले तब भी मेरी भक्ति में अंतर न पड़े।'

पार्वती ठिठक गईं। महादेव भी वहाँ प्रकट हो गये और कहने लगे – 'दो, दो न ! जो माँग रहा है, सो दे दो !! मैं कहता था कि विरक्तों की मौज निराली होती है, उसमें अक्ल मत लड़ाओ।' दोनों आपसे में बातें करते रहे और मस्त अवधूत बेपरवाही से श्मशान में घूमने चला गया।

ये महात्मा अवधूत शिरोमणि, परम विरक्त भर्तृहरि जी महाराज थे।

क्रोध अस्पृश्यता है

एक बार बुद्धदेव अपने शिष्यों सहित सभा में विराजमान थे। शिष्यगण उन्हें काफी देर से मौन देखकर चिंतित थे कि कहीं वे अस्वस्थ तो नहीं हैं। एक शिष्य ने अधीर होकर पूछा – 'आप आज इस प्रकार मौन क्यों हैं? क्या हमसे कोई अपराध हुआ है?' फिर भी वे मौन ही रहे। तभी बाहर खड़ा एक व्यक्ति जोर से बोला –'आज मुझे सभा में बैठने की अनुमति क्यों नहीं दी गई?' वह क्रोध से उद्विग्न था। एक उदार शिष्य ने उसका पक्ष लेते हुए बुद्धदेव से कहा, 'भगवन्! उसे सभा में आने की अनुमति प्रदान करें।' बुद्धदेव अपना मौन तोड़ते हुए बोले– 'नहीं! वह अस्पृश्य है, उसे आज्ञा नहीं दी जा सकती।' शिष्यगण आश्चर्य में डूब गए। तब कई शिष्य बोल उठे कि वह अस्पृश्य क्यों? आपके धर्म में जात–पाँत का कोई भेद नहीं, फिर वह अस्पृश्य कैसे है? बुद्धदेव बोले – 'वह आज क्रोधित होकर आया है। क्रोध से जीवन की पवित्रता भंग होती है। क्रोधी व्यक्ति मानसिक हिंसा करता है इसलिए किसी भी कारण से क्रोध करनेवाला अस्पृश्य होता है। उसे कुछ समय तक पृथक एकान्त में खड़ा रहकर प्रायश्चित्त करना चाहिए ताकि उसकी अस्पृश्यता दूर हो जाय।

शिष्यगण समझ गए कि अस्पृश्यता क्या है और अस्पृश्य कौन है। उस व्यक्ति को भी पश्चात्ताप हुआ फिर उसने कभी क्रोधित नहीं होने की कसम खाई।

मन की परीक्षा

एक बार श्री समर्थ रामदास जी सतारा जाने के क्रम में बीच में देहेगाँव में रुके। साथ में उनके शिष्य दत्तूबुवा भी थे। श्री समर्थ को उस समय भूख लगी। दत्तूबुवा ने कहा – 'आप यहीं बैठें, मैं कुछ खाने की व्यवस्था कर लाता हूँ।' रास्ते में उन्होंने सोचा कि लौटने में देर हो सकती है, इसलिए क्यों न पास के खेत में लगे कुछ भुट्टे को ही उखाड़ लूँ। उन्होंने खेत में से चार भुट्टों को ही उखाड़ लिया। जब उन्होंने भुट्टों को भूँजना शुरु किया तो धुँआ निकलते देख खेत का मालिक वहाँ आ पहुँचा। भुट्टे चुराये देख उसे गुस्सा आया और उसने हाथ के डंडे से रामदास को मारना शुरु किया। दत्तूबुवा ने उसे रोकने की कोशिश की पर श्री समर्थ ने उसे वैसा करने से इन्कार कर दिया। दत्तूबुवा को पश्चात्ताप हुआ कि उनके कारण ही श्री समर्थ को मार खानी पड़ी।

दूसरे दिन वे लोग सतारा पहुँचे। श्री समर्थ के माथे पर बँधी पट्टी को देखकर शिवाजी ने उनसे इस सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने उस खेत के मालिक को बुलवाने को कहा। खेत का मालिक वहाँ उपस्थित हुआ। उसे जब मालूम हुआ कि जिसे उसने कल मारा था वे तो शिवाजी के गुरु हैं तब उसके तो होश ही उड़ गये। शिवाजी श्री समर्थ से बोले – 'महाराज! बतायें, इसे कौन–सा दण्ड दूँ। खेत का मालिक स्वामी के चरणों में गिर पड़ा और उसने उनसे क्षमा माँगी। श्री समर्थ बोले – 'शिवा, इसने कोई गलत काम नहीं किया है। इसने एक तरह से हमारे मन की परीक्षा ही ली है। इसके मारने से मुझे यह तो पता चल गया कि कहीं मुझे यह अहंकार तो नहीं हो गया कि मैं एक राजा का गुरु हूँ जिससे मुझे कोई मार नहीं सकता। अतः इसे सजा के बदले कोई कीमती वस्त्र देकर इसे ससम्मान विदा करो। इसका यही दण्ड है।'

बुराई से अच्छाई का रास्ता

हजरत ईसा के सामने लोगों ने एक धोबी को पेश किया और शिकायत की कि वह बड़ा ही दुष्ट है, तमाम आदमियों को तंग कर रखा है हजरत की जुबान से निकला कि वह शाम तक मर जायेगा।

धोबी कपड़े धोने चला गया। उसकी लड़की उसका भोजन लेकर घाट पर गयी। उसी समय कोई भूखा धोबी कपड़े धोने चला गया। उसकी लड़की उसका भोजन लेकर घाट पर गयी। उसी समय कोई भूखा फकीर वहाँ जा पहुँचा। धोबी ने उसे एक रोटी खाने को दी। फकीर ने दुआ दी– 'तेरा भला हो।' भूखा जानकर धोबी ने दूसरी रोटी दी तब फकीर ने कहा – 'तेरी अचिन्त्य आफतें दूर हों।' उसी प्रकार तीसरी रोटी खाकर फकीर ने दुआ दी – 'तेरा दिल बुराइयों से पाक हो।'

शाम को धोबी जिन्दा घर वापस आया। लोग हजरत ईसा से जाकर बोले – 'धोबी तो अबतक जिन्दा है।' उस समय हजरत ने कहा – 'जिस वक्त उसके लिए हमारी हमारी तरफ से बददुआ हुई उसी समय एक काले नाग को उसे डँसने का हुक्म हुआ। उसकी गठरी खोलकर देखा जाये, वह काला नाग उसी में पड़ा है। लेकिन उस फकीर की दुआ ने नाग का मुँह बन्द कर दिया। अब वह धोबी पहले जैसा तो रहा नहीं। उसका दिल साफ हो चुका है। आगे में अब वह तुम्हें तकलीफ नहीं देगा।' मतलब यह कि वर्तमान के अच्छे कर्मों से पूर्व के बुरे कर्मों का निराकरण भी हो जाता है। अतः जब से सूझ जाये, शुभ का रास्ता अख्तियार कर लेना चाहिए।

अपने स्वभाव के धर्म का पालन

एक बार संत एकनाथ जी गोदावरी में स्नान कर रहे थे। इतने में उन्होंने देखा कि सामने से एक बिच्छू पानी में बहा जा रहा था। उनको उस पर दया आ गयी। उन्होंने उसे अपने हाथ से पकड़कर पानी से बाहर कर दिया। परंतु बिच्छू तो बिच्छू ही ठहरा। उसने उनकी हथेली पर डंक मार दी। एकनाथ जी उस ओर ध्यान न देकर पुनः स्नान करने लगे। इतने में लहरों का एक झोंका आया और बिच्छू फिर पानी में बहने लगा। बिच्छू को पानी में दुबारा बहता देखकर एकनाथ जी ने फिर से उसकी रक्षा की। परन्तु इस बार भी बिच्छू डंक मारने से नहीं चूका। एकनाथ जी चुपचाप हाथ मलने लगे। लहर का झोंका तीसरी बार आया और बिच्छू को बहा ले गया। एकनाथ जी ने तिबारे उसकी रक्षा की और तीसरे डंक को भी सहा।

समीप ही एक व्यक्ति स्नान कर रहा था। उसने यह सब देखा तो एकनाथजी से पूछा, ''महाराज! मैं कब से देख रहा हूँ कि यह बिच्छू बार-बार आपको डंक मार रहा है और तब भी आप उसकी रक्षा किये जा रहे हैं। क्या ऐसे विषैले जीव पर दया करना उचित है?'

एकनाथ जी ने जवाब दिया, 'बन्धु ! इसमें अनुचित क्या है? मैं अपने स्वभाव के धर्म का पालन कर रहा हूँ और वह अपने। किसी जीव की रक्षा करना हमारा फर्ज बनता है। भगवान ने उसका स्वभाव ही ऐसा बनाया है कि वह हर किसी को डंक मारता है। फिर जब वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकता तब मैं अपने स्वभाव से कैसे विमुख हो सकता हूँ?'

मानव-प्रेम

एक बार आचार्य रामानुज के गुरु गोष्ठीपूर्ण ने उनसे कहा – 'वत्स ! आज मैं तुम्हें एक अलौकिक मंत्र दूँगा। इस मंत्र का माहात्म्य बहुत कम लोग जानते हैं। तुम एक शक्तिमान आधार हो, यह जानकर ही यह मंत्र मैंने तुम्हें दिया है। मंत्र-चैतन्य के साथ जो कोई इसे ग्रहण करेगा, वह वैकुण्ठ गमन करेगा। इसलिए सच्चे अधिकारी के अलावा किसी को भी यह मंत्र न देना।'

मंत्र लेने के बाद अलौकिक आनन्द से रामानुज का मन-प्राण पुलकित हो उठा। प्रगाढ़ भक्ति से गुरु के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर वे वहाँ से विदा हुए।

वे भावावेश से आविष्ट थे। उस आनन्द-धारा को दिग्दिगन्तों में फैला देने के लिए व्यग्र हो रहे थे। राह चलते जिस पथिक को पाते, उसको वे आवाहन करते– ''अजी, तुम सभी मेरा अनुशरण करो। आज मैंने जो अमूल्य दिव्य सम्पदा पाई है उसे सबमें वितरित कर मैं धन्य बनूँगा।''

लोग सोचते, कौन है यह परम कारुणिक संन्यासी जो इस तरह मुक्तहस्त सबको अमृत दान देना चाहता है? इसके मुखमंड़ल पर स्वर्गीय आनन्द की विभा झलमल कर रही है। इसकी वाणी में इतना मोहक आकर्षण है।

सहस्र नर–नारी उस अलौकिक दिव्य भावसम्पन्न महापुरुष के पीछे–पीछे तिरुकोष्ठिर के श्री विष्णु मंदिर में अग्रसर होने लगे। लोक–कल्याण की भावना से अनुप्राणित रामानुज के कण्ठ से उस समय उच्च स्वर में वाणी निर्गत हुई – ''ओऽम् नमो भगवते वासुदेवाय !''

वह उत्तेजनापूर्ण संवाद अविलम्ब गोष्ठिपूर्ण के निकट जा पहुँचा। रामानुज जैसे ही गुरु के पास जाकर खड़े हुए, वे क्रोधोद्दीप्त हो कहने लगे– ''नराधम, इसी समय तुम यहाँ से दूर हो जाओ। मै तुम्हारा मुँह नही देखना चाहता हूँ। मैंने तुम्हें पवित्र और निगूढ़ महामंत्र दिया था। जो उसका इस तरह असद्व्यवहार करे वह महापातकी नहीं तो और क्या है। अनन्त नरक ही तुम्हारे लिए उपयुक्त स्थान है।'

गुरु के उस तीव्र तिरस्कार से रामानुज जरा भी विचलित नहीं हुए। शान्त भाव से उन्होंने कहा – 'प्रभु, आपके ही श्रीमुख से सुना है कि उस महामंत्र का जो जाप करेगा उसे परमगति प्राप्त होगी। यदि मेरे समान नगण्य मनुष्य के अनन्त नरक में जाने से सहस्र–सहस्र लोगों को मुक्तिलाभ हो जाय तो वह अनन्त नरक ही मुझे मंजूर है। वैकुण्ठवास की अपेक्षा यह मेरे लिए अधिक काम्य है।''

रामानुज के उत्तर से गोष्ठिपूर्ण चौंक उठे। लोकमंगल के लिए जो महापुरुष इस निर्ममभाव से आत्मविलोप कर सके, अपनी मुक्ति–सम्पदा को निरपेक्ष–भाव से अवहेलना कर दे, उसकी पृथ्वी में किससे तुलना की जाय ! गोष्ठिपूर्ण ने प्रेम से भरकर रामानुज को गले से लगा लिया और बोले – 'रामानुज, धन्य हो तुम और तुम्हारा मानव–प्रेम। शिष्य होकर आज तुमने मुझे तत्त्वज्ञान सिखा दिया। जिसका हृदय इतना महान है वह तो लोकपिता है। उसमें विष्णु का अंश है, इसमें कोई संदेह नहीं।' तुम्हारे जैसे परम भागवत की उपस्थिति से नरक भी वैकुन्ठ बन जायेगा।

एक बार एक व्यक्ति ने बाबा फरीद से प्रश्न किया – 'महाराज, हमने सुना है कि जब प्रभु ईसा को सूली दी जा रही थी तो उनके चेहरे से प्रसन्नता की आभा टपक रही थी और उन्हें सूली दिये जाने का जरा भी दुख न था। उसके विपरीत उन्होंने भगवान से यहूदियों को क्षमा करने की प्रार्थना की थी।' उस व्यक्ति ने कहा – 'महाराज, हमने यह भी सुना है कि जब मन्सूर के हाथ–पैर काटे गये, आँखें फोड़ी गयीं तो उसने 'हूँ' या 'चूँ' तक न की और सब कुछ उसने हँसते हुए सहन किया। क्या यह सम्भव है? मुझे तो इस पर बिल्कुल विश्वास नहीं होता।'

शेख फरीद ने प्रश्न को चुपचाप सुन लिया और उसे एक कच्चा नारियल देते हुए उसे फोड़ने के लिए कहा। उस व्यक्ति ने सोचा, शेख शायद प्रश्न का उत्तर दे नहीं पा रहे हैं, इसलिए उसका ध्यान वे दूसरी तरफ मोड़ रहे हैं।

वह बोला – 'महाराज, आपने मेरे प्रश्न का जवाब नहीं दिया।'

फरीद ने कहा – 'पहले इस नारियल को तो फोड़ो। लेकिन हाँ, ध्यान रखना कि इसकी गरी अलग निकल आये।'

'यह कैसे हो सकता है, महाराज !' वह व्यक्ति बोला, 'यह नारियल तो कच्चा है और इसकी गरी और खोल दोनों जुड़े हुए हैं, इसलिए गरी को अलग कैसे निकाल सकता हूँ?'

संत ने तब एक दूसरा सूखा नारियल देते हुए उससे कहा – 'अब इसे फोड़कर इसकी गरी देना।' उस व्यक्ति ने नारियल फोड़कर गरी (गोला) निकालकर उनके समक्ष रख दी। तब उन्होंने उससे पूछा – 'इसकी गरी कैसे निकल आयी?' उस व्यक्ति ने जवाब दिया – 'यह सूखी थी, इसलिए खोल से अलग थी, इसके कारण यह निकल आयी।' संत ने कहा – 'तुम्हारे प्रश्न का भी यही उत्तर है। आम लोगों का शरीर खोल से जुड़ा होता है, लेकिन ईसा–मन्सूर जैसे पहुँचे हुए महात्मा अपने शरीर को खोल से अलग रखते हैं, इस कारण यातना देने पर भी उन्हें न तो पीड़ा हुई, न ही उसका कुछ रंज हुआ। लेकिन तू तो कच्चा नारियल मालूम पड़ता है, इसी कारण तेरे मन में ये विचार उठे कि उन दोनों को यातना क्यों महसूस न हुई।'

राम एक मिस्ट्री है

अमेरिका में एक सुंदर युवती ने स्वामी रामतीर्थ से कुछ बातें करने के लिए अलग समय माँगा। स्वामी जी ने उसको दूसरे दिन सुबह मिलने को कहा।

वह युवती स्वामी रामतीर्थ से मिलने के लिए उनके निवासस्थान पर गई। उसने स्वामी जी से कहा – 'मैं एक धनाढ्य पिता की पुत्री हूँ। मैं संसार भर में आपके नाम से कॉलेज, स्कूल, पुस्तकालय इत्यादि खोलना चाहती हूँ। मैं सर्वत्र आपके नाम से मिशन खुलवा दूँगी।'

स्वामी रामतीर्थ ने कहा कि दुनिया में जितने भी धार्मिक मिशन हैं वे सब राम के ही मिशन हैं। राम जो कुछ कहता है, वह शाश्वत सत्य है। राम के पैदा होने से हजारों वर्ष पूर्व वेदों और उपनिषदों ने दुनिया को जो संदेश सुनाया है वही राम आपलोगों के समक्ष यहाँ अमेरिका में प्रस्तुत कर रहा है। अतः राम को अपने नाम से अलग मिशन चलाने की कोई लालसा नहीं है। नाम तो केवल एक ईश्वर का ही है जो सदा–सदा रहेगा। व्यक्तिगत नाम तो ओस की बूँद की तरह नाशवान है।'

उस युवती ने जब बार–बार खैराती अस्पताल और कॉलेज इत्यादि खोलने की बात की तब स्वामी रामतीर्थ ने बहुत शांतिपूर्ण ढंग से पूछा कि आखिर आपकी आंतरिक इच्छा क्या है ? आप चाहती क्या हैं? इस सीधे प्रश्न पर उस युवती ने स्वामी राम को घूरकर देखा, कुछ झिझकी व शरमायी फिर रहस्यमय चितवन से देखकर मुस्कुराती हुई बोली – 'मैं कुछ नहीं चाहती। केवल मैं अपना नाम 'मिसेज राम' लिखना चाहती हूँ। मैं आपके नजदीक से नजदीक रहकर आपकी सेवा करना चाहती हूँ। बस, आप मुझे अपना लें।'

स्वामी रामतीर्थ अपने स्वभाव के अनुसार खिल–खिलाकर हँस पड़े और बोले – 'राम न तो मास्टर है, न मिस। न मिस्टर है, न मिसेज। जब राम मिस्टर ही नहीं तो उसकी मिसेज होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।'

वह युवती लज्जित होकर व्याकुल हो उठी। वह खीझकर बोली – 'जब तुम मास्टर और मिस्टर कुछ नहीं हो तो तुम क्या हो?'

स्वामी राम फिर मुस्कुराये और बोले – 'राम एक मिस्ट्री है, एक रहस्य।'

वह युवती अब बिल्कुल बौखला उठी – 'नहीं–नहीं, मैं फिलॉसफी नहीं चाहती। मैं तुमसे नजदीक का रिश्ता चाहती हूँ।'

स्वामी राम ने कहा – 'मैं तुमसे नजदीक से नजदीक तो हूँ ही। कहने को हम दोनों अलग–अलग दिखलाई देते हैं, किन्तु आत्मा के रिश्ते से हम दोनों एक ही हैं। इससे ज्यादा नजदीक का रिश्ता और क्या हो सकता है ?'

उसने परेशानी दिखलाते हुए कहा कि मैं आत्मा का रिश्ता नहीं शारीरिक रिश्ता चाहती हूँ। राम! मुझे निराश मत करो।

स्वामी रामतीर्थ शांत भाव से बैठे थे। वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा – 'जानती हो हाड़ और मांस का नजदीक से नजदीक का रिश्ता माँ और बेटे का होता है जिससे आदमी का खून और हाड़–मांस बनता है। बस, आज से तुम मेरी माँ हुई और मैं तुम्हारा बेटा।'यह उत्तर सुनकर युवती ने अपना माथा पीट लिया और बोली – 'You have completely defeated me Ram.'

अर्थात् आपने मुझे पूर्ण रूप से परास्त कर दिया।

युवती फूट–फूटकर रोने लगी। उधर स्वामी रामतीर्थ ने अपनी आँखें बंद कर लीं और वे समाधिस्थ हो गये। कुछ देर बाद आँखें खुलीं तो वह स्त्री जा चुकी थी।

उस घटना के पश्चात् 'मनोरीना' नाम की वह युवती बराबर स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों में आती तो रही, किन्तु दूर एक कोने में बैठकर रोती रहती थी।

अभ्यास का फल

इंग्लैंड में एक बहुत बड़ा संगीतकार था जिसकी मशहूरी केवल यूरोप ही नहीं बल्कि अमेरिका तक फैली हुई थी। वह साल में एक बार अपनी कला का प्रदर्शन केवल आधे घंटे के लिए किया करता था। वर्षभर लोग बड़ी बेताबी से उस तारीख का इन्तजार करते रहते। तारीख का एलान होते ही लोग टिकट खरीदना शुरु कर देते। कई बार वह टिकटें ब्लैक मार्केट में बिकने लगतीं। वह संगीतकार अपने समय पर आता और अपनी कला का प्रदर्शन करके चला जाता। उसकी उंगलियाँ जब वायलीन पर थिरकतीं तो लोग दीवाने हो जाते। यह मशहूर था कि उसकी संगीत में वह जादू था कि मुर्दे भी जीवित हो उठते। वह एक विशेष धुन बजाता तो लोग रोने लगते। दूसरी धुन बजाने पर लोग हँसने लगते। तीसरी और अंतिम धुन सबको मस्त सा बना देती और लोगों को उसके रंगमंच से जाने का पता तक न चलता था। एक बार जब वह संगीतकार अपनी कला का प्रदर्शन करके जा रहा था तो एक युवक ने पूछा–" आप केवल आध घंटे के लिए कई हजार रुपये बटोर लेते हैं। कितना महँगा है आपका संगीत प्रदर्शन!"

संगीतकार यह बात सुनकर युवक की ओर देखता हुआ बोला–" मैं केवल आधे घंटे के संगीत की इतनी फीस नहीं लेता, वर्ष के 364 दिन और साढ़े तेईस घंटों के परिश्रम और अभ्यास का मूल्य लेता हूँ। इतना अभ्यास न करूँ तो मेरे सुरों में वह दर्द और जादू न उत्पन्न हो सके जो लोगों को मस्त बना देता है।"

जैसे आधे घंटे के संगीत के कार्यक्रम के पीछे उसके कई महीनों की रियाजत तथा दिन–रात का परिश्रम और अभ्यास छिपा होता है इसी प्रकार हर रचना न जाने कितनी मेहनत, त्याग और बलिदान माँगती है। फूल का रंग, सुंगध, उसकी सुंदरता और आर्कषण को देखकर यदि कल्पना की जाये तो माली का कठिन परिश्रम स्पष्ट दिखाई देने लगता है। किसी मुँह बोलते बुत को देखकर सहसा बुत बनानेवाले की तस्वीर आँखों के सामने आ जाती है। केवल बनानेवाला ही नहीं जानता देखनेवाली आँखें भी जान लेती हैं कि उस मूर्ति के एक–एक अंग में जीवन डालने के लिए मूर्तिकार ने कितने दिनों तक खून पसीने के समान बहाये होंगे। कितनी रातों की नींद छेनी और हथौड़ी हाथों में लिये एक–एक अंग को संवारने में हराम की होगी।

दया और समता

महाभारत काल की घटना है। पांडव अज्ञातवास में थे। यक्ष के तालाब से जल लेने गए अर्जुन, भीम आदि चार भाई यक्ष के प्रश्नों के जवाब न देने के कारण उसके शाप से मूर्छित हो गए थे। सबसे अंत में युधिष्ठिर जल लेने गए। यक्ष ने उनसे भी जल स्पर्श करने से पहले अपने प्रश्नों का जवाब देने को कहा। युधिष्ठिर ने एक–एक करके उसके सभी प्रश्नों का उत्तर दे दिया। तब यक्ष ने प्रसन्न होकर कहा, "वत्स, तुम्हारे शिष्टाचार और बुद्धिमत्ता से मैं प्रसन्न हुआ। अतः तुम अपने चार भाइयों में से किसी एक के जीवित होने का वर माँगो।" युधिष्ठिर ने झट कहा, 'हे विप्रवर! आप मेरे नकुल भाई को जिला दें।' यक्ष ने साश्चर्य पूछा, 'नकुल तो तुम्हारा सौतेला भाइ। अर्जुन सहोदर भी है और तुम सबों में अधिक वीर तथा होनहार भी। फिर तुने अर्जुन को क्यों नहीं जिलाना चाहा? धर्मराज ने जवाब दिया–'यक्ष! मेरे पिता की दो स्त्रियाँ हैं–कुन्ती और माद्री। ये दोनों पुत्रवती बनी रहें, इसी समता के भाववश मैंने नकुल को जिलाना चाहा है। 'यक्ष ने कहा–' हे भरतश्रेष्ठ तुमने मोह और काम का त्यागकर दया और समता की रक्षा की है। अतः तुम्हारे सभी भाई जीवित हों।'

यक्ष के वरदान से मृत चारों पांडव जी उठे। यक्ष ने अपना परिचय दिया कि वे युधिष्ठिर के पिता स्वयं 'धर्मराज' थे जो उनके सत्य और धर्म की परीक्षा लेने आए थे।

मैंने ली ही नहीं।

एक बार गौतम बुद्ध राजगृह के वेणुवन नामक स्थान में ठहरे हुए थे। एक ब्राह्मण, जिसका कोई सम्बन्धी बौद्ध भिक्षुसंघ में शामिल हो गया था, उन्हें गालियाँ देने लगा। गौतम बुद्ध को जरा भी उत्तेजित न होते देख उसने बुद्धदेव से पूछा – 'आपको बुरा क्यों नहीं लगा? मैंने आपको इतनी गालियाँ दीं फिर भी आप चुपचाप सुनते रहे!' बुद्धदेव ने शान्त भाव से पूछा – 'अच्छा, यह बताओ, क्या तुम्हारे घर कोई अतिथि या बन्धु-बान्धव आता है?'

'हाँ, अवश्य आता है।'

'तुम उसके लिए अच्छी-अच्छी भोजन-सामग्री भी तैयार करते हो?'

'हाँ, जरूर करता हूँ।'

'अतिथि यदि उन चीजों को ग्रहण न करे तो वे चीजें किसे मिलती हैं?'

'वे हमारी चीजें होती हैं, अतः हमारे ही घर रहती हैं', ब्राह्मण ने जवाब दिया।

गौतम बोले, 'तो बंधु, तुमने जो अभी-अभी गालियाँ दी हैं, उनका मैं उपयोग नहीं करता। तब बताओ भला वे गालियाँ किसे मिलेगीं? तुम्हीं को न? यह भी आदान-प्रदान की बात है। जो चीज तुमने दी वह मैंने ली ही नहीं। अतः वे गालियाँ भी तुम्हें ही मिलीं।'

यह सुनकर उस ब्राह्मण का सर लज्जा से नीचे झुक गया और उसने उनसे क्षमा माँगी।

खरे-खोटे की पहचान

एक आदमी शिष्य बनने के ख्याल से संत एकनाथ जी के पास आ रहा था। उसने एकनाथ जी को पहले देखा नहीं था, सिर्फ उनकी महिमा सुनी थी। वह उनके आश्रम का पता पूछता हुआ उधर को जा रहा था कि रास्ते में उसे एक बूढ़ा आदमी घास काटता हुआ मिला। पूछा –'क्या आप सन्त एकनाथ जी को जानते हैं?' बूढ़े ने जवाब दिया –'वह तो ढ़ोंगी और महाधूर्त्त है। उस चोर के पास तुम क्यों जाना चाहते हो?' उस आदमी ने अपनी छड़ी से उस बूढ़े के सिर पर प्रहार करते हुए कहा –'बड़ा बदतमीज है तू जो उतने बड़े सन्त को ऐसा अपशब्द बोलता है।'

वह आदमी एकनाथ जी के आश्रम जा पहुँचा। गुरुदेव से मिलने की बात कही। शिष्यों ने बताया कि वे अब आते ही होंगे – गाय के लिए घास लेने खेतों की ओर गये हैं। कुछ ही देर में काँख में घास दबाये हुए वही बूढ़े आदमी चले आ रहे थे। सभी चेले दौड़कर पाँवों में गिरकर प्रणाम करने लगे। उस आदमी को समझते देर नहीं लगी कि वही थे संत एकनाथ जी महाराज। अब तो बेचारे को काटो तो देह में खून नहीं। वह रोता हुआ उनके चरणों में जा गिरा। बाबा बोले – 'दो पाई की हँड़िया खरीदते हो तो उसे ठोंक-ठाक बजाकर देख लेते हो कि वह खरा है या नहीं। इधर जीवन भर के लिए गुरु-शिष्य का रिश्ता करने चले हो। अब ठोककर देख तो लिया कि मैं खरा हूँ या खोटा।'

अद्भुत् उत्तर

प्लेटो एक भाषण-कला विद्यालय चलाते थे। उनके पास एक लड़का पहुँचा और उसने विद्यादान की याचना की। प्लेटो ने कहा – 'पहले मैं तुम्हारी परीक्षा लूँगा। तुमसे दो-चार सवाल पूछूँगा। अपने उत्तर से अगर तुम मुझे संतुष्ट कर दोगे तो मैं अवश्य तुम्हें शिष्य के रूप में स्वीकार कर लूँगा।'

लड़के ने कहा – 'पूछा जाये, मैं तैयार हूँ।' प्लेटो ने पूछा – 'दो और दो मिलने पर क्या होता है?'

लड़के ने उत्तर दिया – 'उसका अनन्तर परिणाम पाँच भी हो सकता है, सात, दस और हजार भी हो सकता है। फिर तीन, दो, एक और शून्य भी हो सकता है। मगर हाँ, यदि वह दो और दो मृत हैं, जड़ हैं, निष्क्रिय हैं तो उसका परिणाम चार ही रह जायेगा।'

प्लेटो उस लड़के का उत्तर सुनकर अवाक् रह गये। कुछ देर तक उसकी ओर देखते हुए चुपचाप बैठे रहे। फिर दौड़कर उसे पकड़ लिया, अपने सीने से लगाया, उसके माथे में आशीर्वाद का चुम्मा दिया और फिर उसे अपनी गोद में बिठाते हुए कहने लगे – 'बेटा, मानवता जबतक कायम रहेगी, तुम्हारा नाम अमिट रहेगा।'

वही लड़का बाद में अरस्तू बना। कितने प्यार और निष्ठा से प्लेटो उस लड़के को तालीम देते रहे, बयान करना कठिन है। यही है गुरु-शिष्य सम्बन्ध। वर्षों तक अरस्तू प्लेटो के पास रह गया था। वही अरस्तू कभी सिकन्दर का गुरु बना।

साधु की सेवा करने का तरीका

एक पादरी था। उसे एक आदिवासी नौकर था। नौकर ने एक दिन पादरी की घड़ी चुरा ली। पादरी ने जानते हुए भी कुछ नहीं कहा, न नौकर से और न ही किसी और से। चार-पाँच वर्ष बीत गये तब एक दिन उस नौकर ने पादरी की घड़ी खुद लौटा दी। पादरी सिर्फ कुछ मुस्कराया, कहा कुछ भी नहीं।

नौकर ने पूछा –'फादर, क्या आप जानते थे कि मैंने आपकी घड़ी चुरायी थी?' पादरी ने कहा – 'जानता था।' नौकर ने फिर पूछा – 'तब आपने कुछ कहा क्यों नहीं?' पादरी बोला – 'किसी से कहना मेरा काम नहीं है। मेरा काम प्रभु ईसा के समक्ष लोगों को अच्छा बनने के लिए प्रार्थना कर देना मात्र है।'

नौकर ने प्रभावित होते हुए पूछा – 'फादर, इस तरह रात-दिन प्रार्थना कर देने से आपको क्या मिलता है ? क्या इसकी कुछ सुनवाई होती है प्रभु के यहाँ?'

पादरी ने उत्तर दिया –'सुनवाई नहीं होती तो तुमने घड़ी कैसे लौटा दी? तुम अच्छे बन गये, यही फायदा हुआ। फायदा यह नहीं कि मेरी घड़ी मिल गयी। सभी अच्छे बनें, सुखी बनें, इसी के लिए मैं रात-दिन प्रभु ईसा से प्रार्थना करता हूँ। दूसरा कोई मेरा स्वार्थ नहीं है।'

तबसे वह नौकर बिल्कुल सुधर गया और उस पादरी का परम भक्त बन गया। बाद में खुद ईसाई भी बन गया। यह है साधु की सेवा करने का तरीका।

मालिक बनोगे तो दुखी होना ही पड़ेगा

एक बिल्ली चूहों को पकड़कर खा जाती थी। चूहों ने मिलकर सलाह की कि उनमें जो बड़ा हो उसे मालिक बना दिया जाये। मालिक की पहचान के लिए उसकी पूँछ में लकड़ी बाँध दी जाये। तय हुआ कि जब बिल्ली आयेगी तब वह लकड़ी को फटाफट बजा देगा और सभी चूहे बिल में घुस जायेंगे। बदले में वे लोग जो कुछ खाना ले आयेंगे उसमें से मुखिया चूहे को भी खिलायेंगे।

इस प्रकार बड़े चूहे की पूँछ में मालिक की पहचान के लिए लकड़ी बाँध दी गयी। इतने में बिल्ली आ गयी। तब सारे चूहे आहट पाकर भागकर बिल में घुस गये। मालिक चूहे ने भी भीतर घुसना चाहा मगर बिल्ली की नजर में वह चढ़ गया। बिल्ली ने उसकी पूँछ पकड़ ली। मुसीबत तो यह खड़ी हो गयी कि पूँछ की लकड़ी बिल के मुँह में अटक गयी। उसके कारण मालिक चूहा अंदर जा नहीं पाया। जब भीतर से बाकी चूहों ने अन्दर आने को कहा तब वह बोला – 'आ तो रहा हूँ पर यह मुखियागिरी आने नहीं देती। मालिक बनने से मेरा बड़ा नुकसान हुआ।' चूहे की पूँछ पकड़कर बिल्ली ने बाहर खींच लिया और उसे मरोड़कर चट कर गयी।

उसी प्रकार तुम्हें भी मुखियागिरी तंग कर रही है। अतः मुखियागिरी छोड़ दो। मालिक तो केवल भगवान हैं। उन्हें उनका स्वामित्व सौंप दो और निश्चिंत हो जाओ। कर्म करने में आलस्य मत करो। तुम कर्म करने में ही सक्षम हो, फल के मामले में सर्वथा विवश हो। सभी कर्म चुश्ती से करो, नफा–नुकसान मालिक पर छोड़ दो। क्यों व्यर्थ हर्ष–शोक करते हो ? याद रखो कि माँ कभी बच्चे का अहित नहीं करती। भगवान तो हमें बहत्तर माताओं के बराबर प्यार करता है तब क्या वही तुम्हारा अहित करेगा ?

भाव के वश भगवान

एक बार मूसा इस्लाम कहीं जा रहे थे। उन्होंने रास्ते में एक गड़ेरिये को कुछ बोलते सुना। वे गौर से उसकी बातें सुनने लगे। गड़ेरिया अपने में ही बड़बड़ाता जा रहा था – 'हे भगवन्! मुझे तो पाँच सौ भेड़ें चराने में ही नहाने–खाने का वक्त नहीं मिलता, तुम्हें तो सारी सृष्टि की सम्भाल करनी पड़ती है। इसके चलते तुम्हारे कपड़े जरूर गंदे हो गये होंगे, केशों में जूँ पड़ गये होंगे। बिना नहाए तुम्हारे केश उलझ गये होंगे। प्रभो! अगर तुम मिल जाते तो मैं तुम्हें नहला देता, तुम्हारे केशों को झाड़ देता, जूँ निकाल देता, कपड़े साफ कर देता।'

गड़ेरिये की बातें सुनकर मूसा ने कहा –'अरे काफिर! तू यह क्या बकता है? हमारा खुदा गन्दा कहाँ जो तू उसकी सफाई करेगा? बंद कर यह बकवास।' गड़ेरिये को भ्रम हो गया कि शायद भगवान के बारे में वह गलत अनुमान लगा रहा था। मूसा की बातों से उसका ख्याल बदल गया।

जब मूसा ध्यान करने बैठे तो जो नूर उन्हें रोज दिखाई पड़ता था वह दिखाई ही नहीं पड़ा। बड़े हैरान हुए। तत्काल इल्हाम हुआ – 'ऐ मूसा! तूने हमारे भक्त का दिल तो लगाया नहीं, उसे तोड़ जरूर दिया। उसका विश्वास जबतक पुनः दृढ़ नहीं हो जाता, तुझे मेरा नूर नहीं दिखाई पड़ेगा।'

अब मूसा चौंके। दौड़े–दौड़े गड़ेरिये के पास पहुँचे। कहा – 'भैया, तू ठीक ही कह रहा था। मैं अभी–अभी खुदा को देखकर आ रहा हूँ। दुनिया भर की देखभाल करने में वह सचमुच इतना परेशान रहता है कि उसे नहाने–धोने की भी फुर्सत नहीं मिलती। वह बेतरह गन्दी हालत में है। तू जाकर उसकी सफाई जरूर कर दे।' इस पर गड़ेरिये का विश्वास फिर पक्का हो गया। वह भोला भक्त भगवान की सफाई करने के लिए दिन–रात उसकी खोज करने लगा और उसी गंदी हालत में उसे प्रभु का दर्शन हुआ। उसने उनकी खूब खिदमत की।

मतलब यह कि भक्त जिस भावना से भगवान की याद करता है वह उसे उसी भाव में मिलता है।

त्याग की परिभाषा

एक बार एक व्यक्ति संत एकनाथ जी के पास आया और बोला, 'महाराज ! मुझे भगवद्प्राप्ति का कोई सरल उपाय बताइये। मैं आपके पास यही जिज्ञासा लेकर आया हूँ।'

एकनाथ जी ने उनसे पूछा, 'तुम अकेले रहते हो या विवाह कर चुके हो ?'

'नहीं महाराज! मेरा विवाह हो चुका है, परन्तु मैं स्त्री और बच्चों का त्यागकर भगवद्प्राप्ति हेतु सदा के लिए आपके पास आया हूँ' – शिष्य ने उत्तर दिया।

महाराज बोले, 'क्या तुम्हारी पत्नी और बच्चे ने तुम्हें आने के लिए अनुमति दी है ?'

उसने जवाब दिया, 'नहीं महाराज ! वे लोग सो रहे थे तभी मैं नींद में उन्हें छोड़कर भाग आया क्योंकि जगे में वे मुझे कभी आने की अनुमति नहीं देते। मैंने घर–गृहस्थी का सम्पूर्णता से त्याग कर दिया है। अब भगवद्प्राप्ति में लगना चाहता हूँ, इसलिए आप मुझे निराश न करें और अपने पास रख लें।''

''मूर्ख, जिस भगवान की प्राप्ति के उद्देश्य से तू यहाँ आया है वह तो तुम्हारे घर में ही मिल जायेगा। अपने पत्नी–बच्चों को छोड़कर अपने कर्त्तव्यों को त्याग देने से तू क्या समझता है कि भगवान तुझपर खुश हो जायेंगे? नहीं। त्याग अपने मन के विकारों का करना होता है, आत्मीयजनों का नहीं। त्याग संसार की विषय–वासनाओं का किया जाता है। जाओ और अनासक्त होकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करो, इसी में तुम्हारा कल्याण है। भगवान इसी से तुम पर खुश होंगे', एकनाथ जी ने उसे समझाते हुए कहा।

भगवान से कुछ न माँगो

बादशाह अकबर के दरबार में एक बार किसी वजीर से कोई कसूर हो गया। उसे क्या सजा दी जाये इसके लिए राजा ने बिरबल की सलाह जाननी चाही। बिरबल ने उस पर दो लाख रुपये का जुर्माना किया। कुछ दिनों बाद बिरबल ने भी उसी प्रकार का कसूर कर दिया। वजीर खुश हुआ कि अब बिरबल को भी उतना ही जुर्माना देना पड़ेगा। बिरबल ने बादशाह से कहा – 'हुजूर, मैंने कुसूर तो किया है। इसके लिए मेरी एक प्रार्थना है। इंसाफ के लिए देहात के नाई बुलाए जायें।' बादशाह ने नाइयों को बुलाने का हुक्म दिया। जब नाई आये तो अकबर ने उनसे फैसला करने को कहा। नाई आपस में विचार–विमर्श करने लगे कि बिरबल को कितना जुर्माना दिया जाये। उनकी दृष्टि में कसूर बहुत छोटा था। नाई तो बहुत मामूली लोग थे जिनकी औकात ही पाँच–दस रुपये की थी। वे उससे ज्यादा सोच भी नहीं सकते थे। उनमें से एक बोला – 'चार–पाँच रुपये जुर्माना कर देना चाहिए।' दूसरा बोला – 'अरे, इसके बाल–बच्चे भूखों मर जायेंगे। पाँच रुपया ज्यादा होता है, दो ही काफी है।' तीसरा बोला – 'दो भी बहुत ज्यादा हैं, एक ही रुपया जुर्माना किया जाये।' चौथे ने कहा – 'एक भी अधिक है, आठ आना ठीक होगा।' फिर सभी नाइयों ने मिलकर बादशाह से अपनी राय सुनाई – 'हुजूर, इसपर आठ आने का जुर्माना किया जाये।' बिरबल ने खट् अठन्नी निकालकर पेश कर दी।

तो, तुमलोग भी भगवान के दरबार में उन्हीं नाइयों की तरह हो। क्योंकि भगवान के विशाल एश्वर्य के सामने तुम्हारी बुद्धि और औकात बिलकुल छोटी है। अतः उस दरबार में माँगोगे भी तो वह बड़ी क्षुद्र होगी। इसलिए तुम्हें भगवान से सांसारिक वस्तुओं की याचना नहीं करनी चाहिए। यदि उसकी कृपा मिल गयी तो सबकुछ मिल गया।

अनादर पर विजय

एक बार बुद्धदेव अपने प्रिय शिष्य आनन्द के साथ कुरु देश में गये। वहाँ की रानी बड़ी दुष्ट प्रकृति की थी। जब उसे पता चला कि बुद्धदेव उसके प्रदेश में आ रहे हैं तो नगरवासियों को आदेश दिया कि वे लोग उनका अनादर करें। फलतः नगर प्रवेश करते ही लोगों ने उन्हें चोर, मूर्ख, गधा आदि से सम्बोधन करना शुरु कर दिया, पर बुद्धदेव शान्त ही रहे। आखिर उनके प्रिय शिष्य आनन्द से न रहा गया। बोले – 'भन्ते! हमें यहाँ से चला जाना चाहिए।'

'कहाँ जाना चाहते हो ?'

'किसी दूसरे नगर में, जहाँ कोई अपशब्द न कहे।''

'और वहाँ भी यदि कोई दुर्व्यवहार करे तो ?'

'किसी और स्थान को चले जायेंगे।'

'नहीं ! जहाँ दुर्व्यवहार हो रहा हो, उस स्थान को तबतक नहीं छोड़ना चाहिए जबतक वहाँ शान्ति स्थापित न हो जाय। क्या तुमने नहीं देखा कि मेरा व्यवहार संग्राम में बढ़े हाथी की तरह होता है। जिस प्रकार हाथी चारों ओर से लग रहे तीरों को सहता रहता है उसी तरह हमें दुष्ट पुरुषों के अपशब्दों को सहन करते रहना चाहिए। याद रखो आनन्द ! मन को हमेशा अपने वश में रखना चाहिए, कभी उत्तेजित् नहीं होना चाहिए। धर्म के प्रचार में हमें लड़ाई के मैदान में खड़े हाथी की तरह अविचल रहना होगा।'

ईश्वर सबका रक्षक

इरान के दो मुसाफिर हिन्दुस्तान की ओर चले आ रहे थे। उनमें से एक पति था दूसरी पत्नी। पत्नी गर्भवती थी। रास्ते में चलते-चलते उसने एक बच्ची को जन्म दिया। पति-पत्नी दुर्भाग्य के मारे थे। उनके पास रहने का कोई साधन नहीं था। साथ में एक मरियल-सा घोड़ा था। अब करें तो क्या। बच्ची को सम्भालें या घोड़े को, सोच नहीं पाये। दोनों मियाँ-बीबी ने विचार किया कि बच्ची को कपड़े में लपेटकर पेड़ के नीचे रख दिया जायें और वे दोनों आगे बढ़ जायें। उन्होंने वही किया। वे दोनों कुछ दूर आगे बढ़े ही थे कि पीछे एक काफला आया। काफले के लोगों ने पेड़ के नीचे बच्ची के रोने की आवाज सुनी। देखा गया तो एक नवजात बच्ची पड़ी थी। काफले में कोई औरत तो थी नहीं जो बच्ची की देखभाल करती। फिर भी किसी तरह उसे उठाकर काफला आगे बढ़ने लगा। रास्ते में वे दोनों मियाँ-बीबी मिल गये। काफले का सरदार उनसे बोला - 'ठहरो, हमारे पास एक बच्ची है और तुम माँ हो, तुम इसे पाल दो। इस पर जितना खर्च लगेगा, हम देंगे। उन दोनों ने खट् अपनी बच्ची को पहचान लिया। सोचा, हम तो इसे मरने को छोड़ आए थे और यह फिर हमारे पास लौट आई। माँ ने अपनी बच्ची को सम्भाल लिया। बच्ची गोद में जाते ही चुप हो गयी।

दोनों मियाँ-बीबी बच्ची की परवरिश करते रहे। साथ ही नौकरी भी ढूढ़ते रहे। इत्तफाक से भाग्य ने पलटा खाया ओर उन्हें राज-दरबार में नौकारी लग गयी। माँ रनिवास का काम सम्भालने लगी और उसका पिता राज-दरबार में लग गया। राजा के घर में राजकुमारी की ही तरह उसका पालन-पोषण होने लगा। बच्ची अत्यन्त सुन्दर थी। एक दिन शाहजादे की नजर उस पर पड़ी। उसने उससे शादी करनी चाही, किन्तु बादशाह एक दासीपुत्री से अपने शाहजादे की शादी के लिए कभी तैयार नहीं था। उसने बंगाल के सूबेदार के शाहजादे के साथ लड़की की शादी करा दी। जब बादशाह मर गया और शाहजादे की तख्तपोशी हुई तो उसने सूबेदार पर चढ़ाई करके उसको मार दिया और अपनी अनचाही बीबी को उसके घर भेज दिया। फिर उसने उसी दासीपुत्री को बीबी बना लिया। वही औरत नूरजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुई। वह जिस तख्त पर बैठती थी वह बत्तीस करोड़ रुपये का था। उसमें हीरे, मोती, जवाहरात जुड़े हुए थे।

बताओ, जिस लड़की को जानवरों के आहार के रूप में फेंक दिया गया था वही इतनी बड़ी रानी कैसे हो गयी? यह सब किसने किया? क्या उसकी मदद के लिए उसका कोई रिस्तेदार, कोई भाई-भतीजा गया? उसकी देखभाल तो ईश्वर के कारण होती रही अतः भगवान ही सारी सृष्टि का रक्षक है। आदमी अहंकारवश व्यर्थ चिन्ता करता है।''

मालिक और मौत को सदा याद रखो

एक बार एक व्यक्ति संत एकनाथ जी के पास आया और बोला, 'महाराज, आपका जीवन कितना आनन्दमय है जो आप निश्चिन्त होकर सिर्फ भगवान का भजन कर रहे हैं। इधर हमलोग रात-दिन गृहस्थी के पचड़े में पड़कर तबाह हो सोते हैं। महाराज, कोई ऐसा उपाय बताइये कि हमलोगों को भी शान्ति का एक क्षण प्राप्त हो सके।

एकनाथ जी ने कहा, 'तुझे उपाय तो बता सकता हूँ पर अब तू आठ ही दिनों का मेहमान है। अतः पहले की ही भाँति अपना जीवन व्यतीत कर।'

उस व्यक्ति ने जैसे ही सुना कि अब वह ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहेगा तो वह हक्का-बक्का हो गया। वह तुरंत ही अपने घर लौट गया। घर में पत्नी से जाकर बोला, 'मैंने तुम्हें कई बार नाहक ही कष्ट दिया है, इसलिए मुझे क्षमा करना।' फिर बच्चों के पास जाकर बोला, 'बेटे, मैंने तुम्हें कई बार पीटा है, अतः मुझे माफ करना।' अपने पड़ोसियों और मित्रों से भी उसने जाकर क्षमा माँगी। बाकी बचे दिनों में उसने खूब साधन-भजन किया। इस तरह आठ दिन बीत गये। नवें दिन वह एकनाथ जी के पास पहुँचा और बोला, 'प्रभु, आठ दिन तो बीत गये। मेरी अंतिम घड़ी में अब कितना समय शेष है?'

एकनाथ जी ने पूछा, 'अच्छा, पहले यह तो बता कि ये आठ दिन कैसे व्यतीत हुए ? भोग-विलास में मस्त होकर तुमने जिंदगी जीया या नहीं ?'

वह आदमी बोला, 'कैसी बातें करते हैं नाथ! मुझे इन आठ दिनों में मृत्यु के सिवा और कुछ दिखाई नहीं दिया। मेरे द्वारा किये गये सारे दुष्कर्म मेरी आँखों के सामने आने लगे। फिर मैंने अपनी पत्नी, बच्चे, मित्रों और पड़ोसियों से जाकर क्षमा माँगी। बाकी बची अवधि में मैंने सिर्फ ईश्वर का भजन किया। इन आठ दिनों में मुझे खाना-पीना सब भुला गया। मैंने सारा समय पश्चात्ताप में बिताया।'

एकनाथ जी बोले, 'तो बन्धु, जिन दो बातों को याद रखकर हम साधु लोग आनन्दपूर्वक रहते हैं वह है – मालिक और मौत। इन्हीं दो बातों को हम साधुजन सदा याद रखते हैं। और तुम गृहस्थ लोग इन दोनों बातों को भुलाकर जीते हो, फलतः हमेशा दुःखों से आक्रान्त रहते हो। तुम्हारा जीवन अशान्त रहता है।'

ज्ञानी और अज्ञानी में फर्क

एक राजा था। उसने अपने गुरु महाराज को राजसी ठाट-बाट के साथ आलीशान बंगले में ठहराया था। गुरु महाराज की राजा से भी बड़ी मान-प्रतिष्ठा थी, चूँकि वे राजा के गुरु थे। एक दिन राजा के मन में ख्याल आया कि गुरु महाराज भी तो मेरी ही तरह रहते हैं, वैसा ही खाते-पीते और सोते हैं। फिर उनमें और मुझमें फर्क कैसा है !

एक दिन राजा ने अपने इस ख्याल को गुरु महाराज के सामने प्रकट कर दिया। बोला, 'महाराज, आपमें और मुझमें फर्क क्या है?' महाराज ने तुरत कुछ उत्तर नहीं दिया। बोले, 'तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान बाद में कर दूँगा।'

एक दिन राजा गुरु महाराज के साथ घूमता-टहलता दूर जंगल की ओर निकल गया। उसका नगर बहुत पीछे छूट गया। वह लौट जाना चाहता था किन्तु गुरु महाराज आगे बढ़ते ही जा रहे थे। उपदेश और बातचीत में डूबे हुए उनको इसका अहसास ही नहीं था कि उन्हें पीछे भी लौटना है। इधर राजा बेचैन होता गया। आखिर उसे कहना ही पड़ा, 'महाराज, हम दोनों नगर से काफी दूर बढ़ आये हैं, अब तो लौटना चाहिए।' महात्मा बोले, 'क्या जरूरत है लौटने की? चलो आज सैर करने निकल चलते हैं। घूमते-घामते कुछ महीने बाद लौटेंगे।' इधर राजा के सिर पर तो दुनिया भर की जिम्मेवारियाँ थीं। राजकाज का बड़ा बंधन। वह उनकी उपेक्षा करके कैसे जा सकता था ! उधर महात्मा लौटने का नाम ही नहीं ले रहे थे। तंग आकर राजा को कहना पड़ा, 'मुझे आगे नहीं जाना, मैं तो अब लौट रहा हूँ। यदि आप जाना चाहें तो जा सकते हैं।' महात्मा बोले, 'तुमने एक दिन मुझसे कुछ जिज्ञासा की थी। उसका जवाब आज तुम्हें बताये देता हूँ ! तुममें और मुझमें यही अन्तर है कि मैं तमाम चीजों को तुम्हारी ही तरह भोगता हुआ भी मिनट भर में उन्हें छोड़ सकता हूँ। किन्तु तुम उन्हें छोड़ नहीं सकते।' इतना कहकर महात्मा राजा को छोड़कर आगे बढ़ गये। इस तरह ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही संसार में रहते हैं किन्तु फर्क यह होता है कि एक यहाँ रहते हुए भी यहीं के हो जाते हैं और दूसरे यहाँ रहकर भी संसार से निर्लिप्त बने रहते हैं।

सच्चा पातिव्रत-धर्म

एक 'शाण्डिली' नाम की औरत अपने पति कौशिक ब्राह्मण की अनन्य प्रेमी थी। उसका पति बड़ा दुराचारी था। उसके सारे शरीर में कुष्ट हो गया था। वह भारी वेश्यागामी भी था। उसने अपनी पत्नी को कहा कि मुझे अमुक वेश्या के घर पहुँचा दो। पत्नी उसको कंधे पर उठाकर लिये जा रही थी। वह उस दुर्व्यसनी और कोढ़ी पति के प्रति भी अनन्य भावसम्पन्न थी। रास्ते में माण्डव्य ऋषि साधना में बैठे हुए थे कि अचानक उस स्त्री का पाँव महात्मा को छू गया। ऋषि ने बिगड़कर उसे शाप देते हुए कहा – 'तू जिसको कंधे पर उठाए लिये जा रही हो वह कल सूर्योदय होते ही मर जायेगा और तू विधवा हो जायेगी।' उस सती ने जवाब दिया कि 'यदि सूर्योदय होते ही मेरा पति मर जायेगा तो कल सूर्योदय होगा ही नहीं।'

उस साध्वी स्त्री के वचनों के प्रभाव से सूर्योदय नहीं हुआ। तमाम हो-हल्ला मच गया। सभी देवी-देवता वहाँ प्रकट हो गये। सती अनुशूया भी आई और समस्या का समाधान किया। प्राणहर्त्ता यमराज भी पहुँचे तब सबके अनुनय-विनय से सती अनुशूया ने शाप अनुग्रह में बदल दिया और वह मृत पति जिन्दा हो उठा।

उस व्यसनी और कोढ़ी पति में क्या वैसी विशेषता थी परन्तु उसकी पत्नी का पातिव्रत-धर्म आला दर्जे का था।

मन से भगवान का चिंतन करो।

एक मुसलमान सबेरे उठकर मस्जिद में बाँग दे रहा था- 'अल्लाह, बिस्मिल्लाह, रसूलल्लाह'..........। वह उस वक्त मन में सोच रहा था कि दस-बीस हजार रुपये होते तो लड़की का ब्याह हो जाता। मस्जिद के निकट से एक सिद्ध फकीर गुजर रहा था। उसने उस मौलवी को आवाज देकर कहा, 'वहाँ क्या व्यर्थ चिल्ला रहा है? तेरा खुदा यहाँ पड़ा है, उठा ले।' वैसा उसने जमीन में पैर मारकर बताया। मौलवी उस फकीर पर अत्यन्त नाराज हुआ और काजी से शिकायत की। फकीर का वह आचरण इस्लाम की तौहीनी साबित हुआ और उसे सजा दी गयी। फकीर ने पूछा, 'मेरा कसूर क्या है जो मुझे सजा दी जा रही है? इस मौलवी से ही पूछा जाये कि वहाँ बांग देते वक्त क्या यह दस हजार रुपये का ख्याल नहीं कर रहा था? इसके मन की बात जानकर ही मैंने जमीन में पैर मारकर उसके खुदा को वहाँ बताया था। उस जगह को खोदकर देखा जाय, वहाँ दस हजार रुपये न पड़े हों तो मुझे चाहे जो सजा दी जाय।' जमीन खोदी गयी तो सचमुच वहाँ दस हजार रुपये मिले।

कहने का मतलब यह कि जब हम भगवान की पूजा और ध्यान करते हैं तब भी मन से दुनिया का ही चिंतन करते हैं। अतः हमारा भगवान तो संसार हुआ, भगवान तो नहीं।

जगत् को अंदर से छोड़कर पकड़े रहो !

किसी राज्य का राजा मर गया था। उसकी गद्दी के लिए लोगों के बीच झगड़ा मचा हुआ था। कोई एक को राजा बनाना चाहता था तो कोई दूसरे को। अन्त में कुछ समझदार लोगों के कहने पर निश्चय हुआ कि राजमहल के गेट के भीतर कल सुबह जो आदमी सबसे पहले प्रवेश करेगा वही राजा बना दिया जायेगा। एक साधू राजमहल के बाहर एक पेड़ की छाया तले पड़ा हुआ था। जब रात में बारिश होने लगी तो अपने को वर्षा से बचाने के लिए वह राजभवन के छज्जे के नीचे छिप गया। सुबह संतरी ने जब दरवाजा खोला तो सबसे पहले गेट पर बाबा ही दिखाई दिया। तुरत घोषणा कर दी गयी कि भावी राजा मिल गया। फिर तो बाबा को बड़े सम्मान के साथ भीतर राजमहल में ले जाया गया और उसके अभिषेक की तैयारी होने लगी।

इधर बाबा हैरत में था कि आखिर यह सब हो क्या रहा है। जब उसे राज मालूम हुआ तो उसने राजसी ठाट–बाट पहनने के पहले अपनी लंगोटी और अलफी की पोटली बना डाली और मंत्री को आदेश दिया कि इसे राज खजाने में सुरक्षित रख दिया जाये। ऐसा ही हुआ।

बाबा को राज्य करते कुछ ही दिन बीते थे कि पड़ोसी देश के राजा ने बाबा के राज्य को कमजोर समझकर उसपर हमला बोल दिया। बात यह हुई कि बाबा के गद्दी पर बैठते ही राज्य में धीरे–धीरे अनाचार फैलता गया। कोई भी अपराधी बाबा के सामने पेश होते ही दण्डमुक्त कर दिया जाता था। फलतः जिसके जी में जो आये करता चला गया। स्वयं बाबा भी राज–काज में मन न देकर भजन–कीर्तन और ध्यान में ही समय बिताने लगा। इस माहौल में राज्य–व्यवस्था का कमजोर पड़ जाना स्वाभाविक था।

पड़ोसी देश की सेना धड़ल्ले के साथ राजमहल में घुस गई। इधर बाबा इस चढ़ाई से बेखबर बना हुआ–सा अपने ध्यान–पूजन में लगा हुआ था। राज्य के सेनापति, वजीर आदि ने बाबा के पास पहुँचकर कुछ करने के लिए आदेश माँगा। बोले, 'हुजूर, पड़ोसी देश की फौज से हम घिर गये हैं।' बाबा बोला, 'आने दो। हमारी फौज को उससे लड़ने की क्या जरूरत है। किसी से लड़ाई–झगड़ा करना ठीक नहीं होता।' इसी बीच दुश्मन की फौज दरवाजा तोड़कर भीतर आ गयी और समाधि में बैठे हुए बाबा को गिरफ्तार करनी चाही। सेनापति बाबा से बोला 'हम तुम्हें गिरफ्तार करते हैं, तुम आज से राजा नहीं, हमारे कैदी हो।' बाबा ने पूछा, 'तुम यहाँ आये किसलिए हो?' बोला, 'तुमको कैद करना है। तुम्हारा यह राज्य अब हमारा है।' बाबा बोला, 'वजीर को बुलाओ।' वजीर आया। बाबा ने उससे खजाने में रखी हुई अपनी पोटली मांगी। बाबा को पोटली दे दी गयी। बाबा ने झट् उसे खोलकर अपनी लंगोटी और अलफी पहन ली और बेलौसपने के साथ कहा, 'अब सम्भालो अपना राज्य। इतने दिन हम राजा रहे, कुछ दिन तुम भी रह लो।' यह कहकर बाबा जंगल की ओर चल पड़ा। विरोधी राजा ने बाबा की इस निर्लिप्तता से प्रभावित होकर कहा, 'बाबा, हमसे गलती हो गई। हम यह राज्य फिर आप ही को दे देते हैं। कृपया आप जंगल न जायें।' बाबा बोला, 'तेरे जैसे इस दुनिया में पचासों राजा हो गये। उन सबों ने कुछ–कुछ दिन राज्य किये। थोड़े दिन मैंने भी किया। अब तेरा मन ललचाया है तो तू भी गद्दी सम्भाल ले। लड़ाई करने की क्या जरूरत?' इतना कहकर बाबा जंगल की ओर बढ़ चला।

जिन्होंने संसार की वास्तविकता को समझा है उनका मन तो ऐसा होता है। बाबा को न राज्य पाने का हर्ष हुआ और न खोने का शोक। इसी प्रकार सुखी जीवन तो तभी होगा जब चित्त हर्ष–शोक से खाली होगा।

करुणा

एक बार बुद्धदेव कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक चरवाहा अपनी भेड़-बकरियों के झुण्ड को लिये जा रहा था। उसमें से एक बकरी लँगड़ाकर चल रही थी। बुद्धदेव ने देखा तो बड़े दुःखी हुए। उन्होंने चरवाहे से पूछा – 'तुझे कहाँ जाना है?' उसने बताया कि मुझे सामनेवाली पहाड़ी पर जाना है। बुद्धदेव बोले – 'अगर मैं इस लंगड़ी बकरी को उठाकर छोड़ आऊँ तो तुझे कोई एतराज तो नहीं।' उसने कहा – 'नहीं।' वे उस लंगड़ी बकरी को उठाकर उस पहाड़ी पर छोड़ आए।

ऐसी थी बुद्धदेव की करुणा !

शरीर सराय की तरह है

एक फकीर ऋषिकेश में गंगा किनारे नंगे बदन बैठा था। उनकी जांघ में एक जबर्दस्त फोड़ा हो गया था। उसमें कीड़े रेंग रहे थे। फकीर उसको निहारकर अत्यन्त खुश हो रहा था। कोई आदमी बगल में खड़े होकर वह देख रहा था। जब कीड़े जख्म से नीचे गिर जाते थे तब फकीर उन्हें उठाकर फिर घाव के बीच रख देता था। वह दृश्य देखकर उस आदमी का दिल सिहर गया। उसने फकीर से कहा, 'आप इस जख्म का इलाज क्यों नहीं कराते ? अमुक अस्पताल में साधु-संतों को मुफ्त दवा दी जाती है, आप वहाँ जाकर मरहम-पट्टी करवा लें।'

फकीर ने उस आदमी से बात का प्रसंग बदलते हुए पूछा, 'आप कल कहाँ ठहरे थे?' उसने जवाब दिया, 'अमुक धर्मशाला में।' फकीर ने पूछा, धर्मशाला में समुचित सफाई-व्यवस्था थी? कमरे की सफेदी ठीक थी? बिस्तरे साफ-सुथरे थे? नालियों में गन्दगी तो नहीं थी?'

उस आदमी ने कहा, 'धर्मशाला तो धर्मशाला ही ठहरा। वहाँ गन्दगी रहती ही है। मुझे तो सिर्फ आज की रात गुजारनी थी, वहाँ की गन्दगी से क्या लेना-देना था?'

फकीर ने कहा, 'भले आदमी, वहाँ कुछ रोज ठहरकर सफाई या मरम्मत वगैरह तो कराना चाहिए था !'

उस आदमी ने कहा, 'रात भर सिर्फ रुकना था। किराया चुकता किया, चलता बना। वहाँ मरम्मत कराने की बेवकूफी क्यों करता ?'

फकीर ने कहा, 'भई, तुमने जो बेवकूफी नहीं की वही मुझे करने को कहते हो ? यह शरीर कुछ दिनों के लिए मुझे रहने को मिला था। अब किराया पूरा हो चुका है। मैं इसमें रहकर अपना काम बना चुका हूँ। अब कल इसे खाली कर दूँगा। एक रोज के लिए मरम्मत कराकर किसी का एहसान क्यों लूँ ?'

वह आदमी दूसरे दिन वहाँ गया। देखा, फकीर का मृत शरीर पड़ा था। उस आदमी को बाबा की एक रोज पूर्व की बात यादकर वहीं वैराग्य जग गया और वह भी फकीर हो गया।

खुदी को मिटा दो – मुक्त हो जाओगे

एक सेठ था। वह रुपये कर्ज पर देने का व्यापार करता था। किसी गरजमन्द शख्स ने उससे कई बार कई मदों में रुपये बतौर कर्ज लिये। जानते ही हो, कर्ज खाज के घाव जैसा होता है। वह बढ़ता गया, बढ़ता गया। काफी दिनों के बाद सेठ ने अपने रुपये की वसूली के लिए विभिन्न आइटमों में लिखित तकाजे जारी किये। हालत तो उस कर्जदार की ऐसी पतली थी कि उसकी पूरी जायदाद की कीमत में कर्ज का सूद भी नहीं चुकता हो पाता, मूल का क्या कहना। बेचारे सेठ ने कदमों में सिर टेक दिया। गिड़गिड़ाते हुए बोला – 'सेठ जी! मिहर करें। कैसे रुपये चुकाऊँ?' सौ–सौ अर्जियाँ उसने करनी शुरु कीं। बेचारे सेठ को थोड़ी दया आ गयी। कहा – 'लो यह कागज, तेरे नाम इसमें करीब बीस आइटमों में लिये गये रुपये दर्ज हैं। इनमें किसी एक आइटम को काट लो।' बेचारा हाथ में कागज सम्भाले सोचता रहा – 'एक काटने के बाद उन्नीस तो शेष बचेंगे ही। किन्तु उन्नीस कौन कहे एक भी देना मेरे लिए नामुमकिन है। फिर क्या करें? सोचा, आखिर इसने एक आइटम काटने की छूट तो दी ही है। तब क्यों नहीं अपना नाम ही काट दें।' उसने अपने नाम पर कलम फेर दी। सेठ ने जब कागज देखा तो कहा– 'यह क्या! तूने तो सभी आइटम रहने ही दिये, फिर काटा क्या?' ऊपर देखा तो नाम ही कटा था। अब बेचारा करता क्या ! वचन तो दे चुका था एक आइटम काट देने को। नाम भी तो एक आइटम था उस परचे में।

इस युक्ति से वह लेनदार अपने सारे कर्जे से बरी हो गया।

तुम पर भी यमराज के अनगिनत चार्ज हैं। छोटे–छोटे चार्ज तो संत के दर्शन तथा सत्संग से ही छूट जायेंगे पर बड़े–बड़े कारनामे जो तुमने जान–बूझकर किये हैं वे तो अभी पीछे पड़े ही हैं। यदि अपनी खुदी को मिटा दो, अस्तित्व ही मिटा दो, अपना मैंपना– अहंकार छोड़ दो तो यमराज के चार्ज से बरी हो जाओगे।

ममत्व की जड़ें बड़ी गहरी होती हैं

राजा भर्तृहरि बारह वर्ष के बाद अपने जन्म–स्थान गये। वहाँ किसी ने उन्हें पहचाना नहीं। रात में एक दुकान के सामने बैठे रहे। ठंढ के मारे रात भर दुकान के चौबारे में पड़ी अधजली लकड़ियों को जला–जलाकर तापते रहे। सबेरा हुआ। दुकानदार ने जैसे ही देखा कि लकड़ियाँ साधु ने फूँक दी हैं, उसने एक अधजली लकड़ी से उनके सिर पर प्रहार कर दिया। सिर से खून बहने लगा। भर्तृहरि बिना कुछ कहे वहाँ से जाकर एक पेड़ के नीचे बैठ गये। आते–जाते लोगों ने उन्हें पहचाना। बस क्या था, सर्वत्रा हल्ला मच गया। बहुत सारे लोग जमा हो गये। राजा विक्रमादित्य भी आए। दुकानदार के तो होश उड़े हुए थे। राजा ने चोट के बारे में पूछा। उन्होंने बताया कि उस दुकानदार ने मारा है। बस क्या था, भीड़ दुकानदार को मारने दौड़ी। विक्रमादित्य अत्यन्त क्रुद्ध हुए। भर्तृहरि बोले – 'उसने मारा मुझे है, अतः सजा भी मुझे ही देने दो।'

राजा बोला – 'कहिये, इसे क्या दण्ड दिया जाये?'

बोले – 'पाँच सौ रुपये इनाम।'

राजा ने कहा – 'इतने बड़े अपराध के बदले इनाम ?'

बोले – 'हाँ, इनाम! बारह वर्ष से राज-पाट छोड़ने के बाद इतनी साधना-तपस्या के बावजूद मेरे मन से यह भाव नहीं निकला था कि मैं कभी यहाँ का राजा था और यह था मेरा गुलाम। इसी से तो बिना पूछे मैंने इसकी लकड़ी फूँक दी। इस मेहरबान आदमी ने प्रहार करके मेरे उसी अहंकार को निकाल दिया अतः इसने मेरा बड़ा उपकार किया है।'

बताओ, उतने बड़े त्यागी लोगों को भी ममत्त्व के संस्कार नहीं छूट पाते तब सामान्य लोगों की क्या बात है ?

संन्यास लेने के बाद बारह वर्ष तक अपने शरीर के सम्बन्धियों को देखने की भी मनाही की गयी है। बारह वर्ष बाद यदि पत्नी या माता बचती हो तो उनसे भिक्षा माँगने की आज्ञा है। देखना होता है कि उन्हें मिलकर ममता जगती है या नहीं। आत्मनिरीक्षण के लिए वैसा कहा गया है। आज तो बात ही बदल गयी है। इस क्षेत्रा में भी भारी गिरावट आ गयी है। गुरु लोगों को बिना पैसे का नौकर मिलता है, अतः बिना जाने-परखे जिस किसी को चेला बना लेते हैं। उसे खट् चोला भी दे देते हैं। इसीलिए तो साधुओं के प्रति लोगों में श्रद्धा नहीं रही। पहले के ऋषि लोग वर्षों तक शिष्य की पात्राता की परख करते थे तब उसे मंत्रा-दीक्षा देते थे। संन्यास की तो और भी कड़ी परीक्षा होती थी।

जूठा अनार

एक बार बुद्धदेव पाटलिपुत्र गए। राजा बिम्बिसार और नगरवासियों ने अपनी क्षमतानुसार उन्हें कीमती हीरे-मोती के हार भेंट किये। बुद्धदेव ने उन सबको अनमने ढंग से एक हाथ से स्वीकार कर लिया।

इतने में 70-80 वर्ष की एक बुढ़िया लाठी टेकते-टेकते वहाँ आई। बुद्धदेव को प्रणाम कर वह बोली – 'भगवन् ! आपके आने का समाचार मुझे अभी-अभी मिला है। उस समय मैं अनार खा रही थी। मेरे पास कोई दूसरी चीज न होने के कारण मैं इस अधखाये फल को ही ले आई हूँ। यदि आप मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करें तो मैं अपने आपको भाग्यशाली समझूँगी।' बुद्धदेव ने प्रसन्न मुद्रा में उसके उस फल को दोनो हाथों से ग्रहण किया।

राजा बिम्बिसार को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने बुद्धदेव से पूछा – 'भगवन् ! हम सबने आपको इतने कीमती उपहार दिये जिन्हें आपने उदासीन भाव से एक ही हाथ से ग्रहण किया, लेकिन इस बुढ़िया द्वारा दिये गए इस तुच्छ और जूठे फल को आपने आह्लादित् मुद्रा में दोनो हाथों से ग्रहण किया, ऐसा क्यों ?'

यह सुनकर बुद्धदेव मुस्कराये। बोले – 'राजन्! आप सबने जो बहुमूल्य उपहार दिया है वह आपकी सम्पत्ति का शतांश भी नहीं है। परंतु इस बुढ़िया ने जो कुछ दिया है वही उसका सबकुछ था। आपने जो कुछ दिया उसका कईगुणा तो आपके खजाने में भी भरा पड़ा है। इस बुढ़िया ने तुच्छ और छोटा ही भेंट क्यों न भेंट किया हो, अपना सबकुछ दिया है। सच्चे अन्तःकरण से दिया है। यही कारण है कि इस दान को मैंने खुले हृदय से, दोनो हाथों से लिया है।'

आग की कीमत आँख है।

शेख फरीद का एक शिष्य बहुत ही नेक इंसान था। जब भी वह बाजार जाता तो एक वेश्या उससे मजाक किया करती थी। वह बेचारा दूसरी ओर ध्यान कर लेता था लेकिन ज्यों–ज्यों वह दूसरी तरफ ध्यान करता; वह और भी मजाक करती।

एक दिन फरीद साहब ने उस शिष्य से कहा कि आग चाहिए। उस जमाने में लोग आग दबाकर रखते थे। घर में आग नहीं थी। उसने गली–मोहल्ले में पूछा, बहूत घूमा, लेकिन आग नहीं मिली। बाजार में जाने पर उसने देखा कि वह वेश्या हुक्का पी रही थी। उसने सोचा कि यह वेश्या हमेशा मजाक उड़ाती है। पीर का हुक्म है अतः ऊपर मकान पर चढ़ गया। वेश्या ने उसे देखकर पूछा कि क्या बात है? वह बोला – 'माता जी ! आग चाहिए।' वह मजाक के साथ कहने लगी कि आग की कीमत आँख है। आँख दे जाओ, आग ले जाओ। उसने फौरन चाकू से आँख निकालकर उसके आगे हाजिर कर दिया। वेश्या डर गयी। उसने कहा – 'हाय अल्ला ! तूने यह क्या कर डाला?' वह शिष्य बोला – 'मैंने तो कुछ नहीं किया। मेरे पीर का हुक्म था कि कहीं से आग ले आओ। इसलिए उनकी आज्ञा का पालन किया है।'

वेश्या पीर के प्रति उसके प्रेम को देखकर ग्लानि के मारे उसके चरणों में गिरकर माफी माँगने लगी।

वह शिष्य पट्टी बाँधकर फरीद साहब के पास आया। उन्होंने पूछा – 'आग ले आये हो ?'

उसने कहा – 'जी हुजूर ! ले आया हूँ।' फरीद साहब ने कहा कि यह आँख पर पट्टी क्यों बँधी है? उसने कहा – 'हुजूर, आँख आई है।' फरीद साहब बोले – 'अगर आँख आई हुई है तो पट्टी खोल दो।' जब पट्टी खोली तो आँख पहले की तरह सही सलामत थी।

बाद में वह वेश्या सदा के लिए फरीद साहब की शिष्या बन गयी।

जीवन परिवर्तन

संत हुसेन बसराई के जीवन परिवर्त्तन की घटना बड़ी ही विचित्र है।

एक दिन एक सुन्दर युवती बिना घूँघट के उनके सामने अपने पति की बेवफाई पर नाराज होकर उसकी निंदा करने लगी। हुसेन उसे इस प्रकार बेपर्दा देखकर बोले – 'पहले अपने कपड़े तो सम्भाल, माथा तो ढँक, फिर जो कुछ कहना हो सो कहना।' इस पर वह स्त्री बोली – 'अरे भाई, मैं तो प्रभु के विमुख हुए एक प्राणी के प्रेम में मुग्ध होकर बेहोश हो रही हूँ। आप मुझे सचेत न करते तो मैं ऐसे ही उसे खोजने के लिए बाजार में निकल जाती, पर यह कैसी अचरज की बात है कि प्रभु प्रेम में पागल होकर भी आपको इतनी सुध है कि मेरा मुँह खुला है या ढँका ?'

इस बात का हुसैन के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्हें ख्याल आया कि खुदा की इबादत करते–करते तो इंसान को बेखुद हो जाना चाहिए पर मेरी वैसी स्थिति नहीं है।

दूसरी दफा ऐसा हुआ कि एक बालक हाथ में दीपक लेकर आ रहा था। हुसैन ने उससे पूछा – ‘अच्छा बेटे, क्या तुम यह बता सकते हो कि इस दीपक में रोशनी कहाँ से आई है ?’ उस बालक ने झट् से दीपक को अपनी फूँक से बुझाकर उन्हीं से सवाल पूछ दिया कि अच्छा, पहले आप मुझे यह बताओ कि अब ये रोशनी कहाँ चली गयी ? इस पर हुसैन कुछ जवाब न दे सके। हुसैन को जो कुछ अपने ज्ञान का अहंकार था वह इस छोटे बच्चे के प्रश्न से चूर हो गया।

तीसरी घटना ऐसी हुई कि एक शराबी नशे में चूर लड़खड़ाते हुए कहीं चला जा रहा था। उसे देखकर हुसैन ने कहा – ‘अरे भाई ! पाँव सम्भालकर चल नहीं तो गिर जाएगा।’ उत्तर में शराबी बोला – ‘अरे भले मानुष ! तू मुझे कहनेवाला कौन है ? पहले अपने पैर तो सम्भाल ! तू तो धर्मात्मा कहलाता है और मैं हूँ एक शराबी। मैं गिर जाऊँगा तो पानी से शरीर को धोकर साफ कर लूँगा पर कहीं तू फिसल गया तो तेरी शुद्धि होनी मुश्किल हो जायेगी।’

यह सुनकर हुसैन बहुत शर्मिंदा हुए। इन तीनों घटनाओं ने हुसैन के जीवन में अपूर्व परिवर्तन ला दिया।

ईश्वर की मर्जी के खिलाफ

पंजाब की भूदान-यात्रा। रास्ते में ही साथ हुए किसी पंजाबी भाई का हाथ पकड़कर विनोबा चलने लगे। उस भाई के हाथ में सोने की अँगूठी थी। कांचनमुक्ति के प्रयोग-कर्ता ने उस भाई से कहा – ‘आपकी यह अँगूठी मुझे चुभती है।’ उस भाई ने अँगूठी निकालकर जेब में रख ली। यह देखकर विनोबा ने पूछा – ‘जेब में क्यों रख ली ?’

साथ चलनेवाले दूसरे भाई ने उस पंजाबी के कान में फुसफुसाया – ‘अरे, तू समझ नहीं रहा। यह तो इशारा है। अँगूठी विनोबा को दे देनी चाहिए। तुरन्त ही उसने जेब से अँगूठी निकालकर विनोबा को दे दी।

’इसको मैं फेंक दूँ ?’ विनोबा ने पूछा।

‘जैसी आपकी मर्जी !’ उसने कहा।

विनोबा ने अँगूठी दूर फेंक दी और फिर उसका हाथ पकड़कर कहने लगे – ‘आपने त्याग किया, इसलिए अब आपका हाथ पकड़ने लायक हुआ।’

उस भाई का नाम शेरसिंह था। बाबा ने कहा – ‘अब तुम सच्चे शेर बने, नहीं तो बकरी या बिल्ली थे।’

विनोबा की दृष्टि से गहने थे – बेड़ियाँ। वे कहते थे – ‘जमीन के नीचे का सोना निकाल-निकालकर शरीर पर चढ़ाने से क्या मिलता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। मिट्टी को मिट्टी में ही रहने देते। यदि भगवान की ऐसी इच्छा होती कि हम शरीर में छेद करके गहने पहनें तो वह तो सर्वसमर्थ है। वह हमें वहीं से नाक-कान छेदकर भेजता। परन्तु उसकी इच्छा स्पष्ट है। फिर हम क्यों नाहक की गुलामी को आमंत्रित करें ?’

विलक्षण सहनशीलता

एक बार एक धर्मद्रोही मनुष्य ने अपने घर भोजन के लिए सन्त अबू उस्मान को आमंत्रित किया। उस्मान समय पर उनके घर गए।

उन्हें आया देख वह मनुष्य बोलने लगा – 'बेवकूफ, भूखा मर। यहाँ अपने बाप की धन–दौलत रख गया था क्या जो दौड़ा–दौड़ा खाने चला आया? जा, भाग यहाँ से।'

बिना कुछ कहे–सुने उस्मान लौट गए। वे कुछ कदम अभी गए ही थे कि उस मनुष्य ने उन्हें आवाज दी।

वे लौटे, परन्तु वह आदमी पुनः बोल उठा – 'खाने का खूब लालच दीखता है तो ले यह पत्थर खा।'

उस्मान पुनः लौट गए। उस आदमी ने उन्हें पुनः बुलाकर कटु वचन कहे। इस प्रकार उसने उन्हें तीस बार बुलाकर बार–बार अपमान किया फिर भी उस्मान के मन पर जरा भी असर नहीं हुआ।

अंत में उस मनुष्य की हार हुई। उस्मान के पैरों पर गिरकर वह रोने लगा। उसने जब उनकी इस विलक्षण सहनशीलता की प्रशंसा की तो अबू उस्मान ने बड़ी विनम्रता से कहा –'इसमें कौन–सी बड़ी बात है। कुत्ते का भी तो यही स्वभाव होता है। उसे कितना भी दुत्कारो, तू–तू करते वह फिर भी पूँछ हिलाता बार–बार वापस आ जाता है। मैंने तो एक कुत्ते का सा काम किया है। इसमें प्रशंसा की क्या बात है?'

धर्म–कर्म का अभिमान मत करो

एक फकीर जंगल में खुदा की वंदगी किया करता था। वह दिन–रात खुदा की इबादत में गुजारता था। उस जंगल में पानी का एक चश्मा था और एक अनार का पेड़ भी था। उस पर प्रतिदिन एक फल पककर तैयार होता था। जब भी फकीर को भूख लगती थी, उस अनार का फल तोड़कर खा लेता था और चश्मा का पानी पी लेता था। इसी तरह खुदा की वंदगी में उसने अपनी तमाम उम्र गुजार दी।

मौत के बाद जब वह खुदा के दरबार में पेश हुआ तो खुदा ने कहा – 'जा तूझे हमने अपने रहमो–करम से बख्श दिया।' यह सुनकर फकीर को बहुत हैरानी हुई।

खुदा ने कहा – 'क्यों फकीर ! तुम्हारे कर्मों का हिसाब कर दिया जाय?' फकीर ने अपना अभिमान छिपाते हुए कहा – 'जैसी आपकी मौज।'

खुदा ने कहा – 'तुम जिस जंगल में भक्ति करते थे, मैंने तुम्हारे खाने के लिए अनार के फल और पीने के लिए चश्मे के पानी का इंतजाम किया। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि अनार का फल एक दिन में तैयार नहीं होता और ऐसे जंगल में पानी के चश्मे का भी होना नामुमकिन था। लेकिन तुम्हारी भक्ति को देखकर मुझे ये सारी व्यवस्थायें करनी पड़ीं।

हिसाब से तो तुम्हारी सारी भक्ति का फल इन दोनों वस्तुओं से ही पूरा हो गया है। कुछ और हो तो बताओ। बोलो, फैसला कर दूँ !' फकीर के पाँवों तले की जमीन खिसक गई। बात बिगड़ती देखकर वह खुदा के कदमों में गिर पड़ा। खुदा ने रहम करके फकीर को माफ कर दिया।

आदमी को कभी भी अपनी भक्ति और धर्म-कर्म का अभिमान नहीं करना चाहिए। सदा नम्र भाव से खुदा की रजा में राजी रहना चाहिए।

अहंकार की आग में, जला जाय संसार। उबरे कोई संत जन, जांका नाम अधार।।

तू कब ठहरेगा

एक बार बुद्धदेव अपने शिष्यों के साथ कौशल राज्य गए। उन दिनों कौशल राज्य में अंगुलिमाल के नाम के एक दस्यु का बड़ा आतंक था। उसके रास्ते में जो भी आता, वह उसे मार देता और उसकी अंगुलियों की माला गले में पहन लेता था। वहाँ के राजा प्रसेनजित ने इसके बारे में अपनी चिंता जताई। बुद्धदेव ने उसका पता पूछा और वहाँ जाने का निश्चय किया। राजा और उसके शिष्यों ने उन्हें वहाँ जाने के लिए बार-बार मना किया किन्तु वे नहीं माने।

रात के अँधेरे में दुर्गम वन के बीच होकर वे चले जा रहे थे। सहसा चारों दिशाओं को प्रकम्पित करती हुई आवाज आई - 'ठहर जाओ।' बुद्धदेव ने कोई ध्यान न दिया और चलते गये। अंगुलिमाल को आश्चर्य हुआ कि जिस रास्ते पर आने में सभी थर्राते हैं, वहाँ यह साधु इतना निर्भीक भाव से कैसे चला जा रहा है! उसने फिर गरजकर कहा -'ठहर जा।' चलते-चलते ही बुद्धदेव ने उत्तर दिया- 'भैया, मैं तो ठहरा ही हूँ, लेकिन तुम कब ठहरोगे?' अंगुलिमाल क्रोधित था ही, कटार लेकर उनको मारने दौड़ा। पर वह कितना ही दौड़ा बुद्धदेव के पास नहीं पहुँच पाया। उन्होंने योगबल से अपने और उसके बीच दूरी स्थित कर दी थी जो घटती ही नहीं थी। जब वह थककर बैठ गया तो भगवान बुद्ध ने उसके निकट जाकर कंधे पर स्नेह का हाथ फेरते हुए कहा - 'मैं तो ठहर गया, क्या तू नहीं ठहरेगा? सब दिन योंही दौड़ता रहेगा?'

बुद्ध के कथन का तात्पर्य था कि कामना और वासना को नष्टकर सम्बोधि के बीच की स्थिति को प्राप्त कर चुका हूँ। मैं तो ठहर गया हूँ किन्तु तुम्हारा चलना तो अबतक भी समाप्त नहीं हुआ है।

उस महापुरुष के दिव्य स्पर्श को पाते ही अंगुलिमाल का भाव बदल गया। वह उनके चरणों में गिरकर रोने लगा। उनके शांत तेजोद्दीप्त चेहरे को देखकर उसने आत्मसमर्पण कर दिया और उनका शिष्य हो गया। बुद्ध ने उसका मस्तक मुण्डन करवाया, भिक्षु का वस्त्र पहनवाया तथा हाथ में भिक्षा-पात्र थमाकर अपनी शिष्य-मंडली में उसे शामिल कर लिया। द्वार-द्वार पर जाकर वह भिक्षा माँगता था। सभी उसे पत्थर मारते पर बिना प्रतिरोध किए वह उन पत्थरों को सहता रहता कि इस तन ने बहुत पाप किये हैं अतः इसे सजा मिलनी चाहिए। बाद में अंगुलिमाल ने लंका में बौद्धधर्म का काफी प्रचार किया।

एक बार नानक देव मक्काशरीफ गये। उनके जाने की खबर सुनकर काजी रुकुनुद्दीन उनसे मिलने आए। सत्संग के दौरान उन्होंने प्रश्न किया –

'फकीरी का आरम्भ क्या है ?'

'अहं का कत्ल करना', नानकदेव ने जवाब दिया।

काजी – 'फकीरी का अन्जाम क्या है ?'

नानक – 'अमर जीवन।'

काजी – 'फकीरी की पहचान क्या है ?'

नानक – 'इन्द्रिय दमन।'

काजी – 'फकीरी की रौशनी क्या है ?'

नानक – 'चुपचाप ध्यान करना।'

काजी – 'फकीरी का लिबास क्या है ?'

नानक – 'सत्य और सौम्यावस्था।'

ब्रह्मचारी की दृष्टि

रावण जब सीताजी को उठाकर ले गया तब रामचन्द्र जी को रास्ते का पता चले, इस दृष्टि से सीताजी ने अपने गहने नीचे पृथ्वी पर फेंक दिये थे। जब प्रभु के हाथ में वे गहने आए तब उन्होंने लक्ष्मणजी को वे गहने दिखाये। पूछने लगे कि क्या तुम इन गहनों को पहचानते हो ?

लक्ष्मणजी ने जवाब दिया –

नाहं जानामि केयरं, नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।

– 'केयूर और कुण्डल, जो कि ऊपर के भाग के अलंकार हैं, उन्हें मैं नहीं जानता। मैं माता सीता के नूपुरों को जानता हूँ, क्योंकि रोज उनके चरणों की वन्दना करते समय मैं उन्हें देखता था।''

एक बार साबरमती आश्रम में इस श्लोक पर चर्चा चली। बापू तो क्रांतिकारी थे ही। वे बोल उठे – 'लक्ष्मण का यह कथन सही नहीं लगता। माता जैसी भाभी का मुख नहीं देखना, यह कैसा ब्रह्मचर्य ?' फिर विनोबा से पूछा – 'इस पर तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?'

विनोबा ने जवाब दिया – 'लक्ष्मण ब्रह्मचारी थे, इसलिए सीता का मुख उन्होंने देखा नहीं था। यह दृष्टि आपको नापसंद है, इसलिए आप उस वाक्य को नापसंद करते हैं। उस दृष्टि से वह नापसंद करने योग्य ही है। स्त्री का मुख नहीं देखने का नियम ब्रह्मचारी को लेना, इसमें गलती नहीं है। परन्तु मैं इस वाक्य का दूसरा अर्थ लेता हूँ कि राम, सीता के पति, लक्ष्मणजी से पूछते हैं। इसका अर्थ है कि राम भी अपनी पत्नी के गहने पहचानते नहीं थे। मतलब, पति भी पत्नी के गहने नहीं पहचानता है। निष्कर्ष यह निकला कि सीता और राम, दोनों अनासक्त थे, दोनों एक दूसरे की आकृति की ओर नहीं देखते थे, एक-दूसरे को ब्रह्मरूप देखते थे। परन्तु लक्ष्मण सीता के चरणों की पूजा करता था, पादाभिवंदन करता था, यानि उपासना के तौर पर चरणाकृति को मूर्त्ति समझकर उपासना करता था।'

इतना सुन्दर भाष्य बनाकर बापू ने कहाः'तुम तो शास्त्र–वचनों का खूब सुन्दर बचाव करना जानते हो। यह ठीक भी तो है। जहाँ तक सम्भव हो, शास्त्रवचनों का अच्छा अर्थ करना चाहिए।'

विनोबा बहुत बार कहते थे कि मैं अपने को स्त्री की उपस्थिति में बहुत सुरक्षित महसूस करता हूँ। सामने कोई स्त्री आई तो मुझे लगता है कि माता आई। ब्रह्मचर्य में पुरुष न पुरुष रहता है न स्त्री स्त्री। दोनों आत्मा हैं। सबको ब्रह्मरूप देखना, यही ब्रह्मचारी की दृष्टि हो सकती है।'

प्रेम और घृणा

एक बार राबिया के पास एक फकीर आया। राबिया जिस धर्मग्रंथ को पढ़ रही थी उसमें से उसने एक पंक्ति को काट दिया। धर्मग्रन्थों को कोई काटता नहीं। उस फकीर ने वह किताब पढ़ी। पढ़ने के बाद उसने राबिया से कहा, 'किसने तुम्हारे धर्मग्रन्थ को नष्ट कर दिया? देखो, इसमें एक लाइन कटी हुई है। यह किसने काटी है?'

राबिया ने कहा, 'मैंने ही काटी है।' बात यह थी कि उस पंक्ति में लिखा हुआ था कि शैतान से घृणा करो। जब से मैंने इस पंक्ति को पढ़ा है, मैं मुश्किल में पड़ गयी हूँ। जिस दिन से मेरे मन में परमात्मा के प्रति प्रेम जगा है उस दिन से मेरे भीतर से घृणा विलीन हो गयी है। मैं अगर चाहूँ तो भी किसी से घृणा नहीं कर सकती। अगर शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाये तो भी मैं उसे प्रेम ही कर सकती हूँ। मेरे पास कोई उपाय नहीं रह गया है; क्योंकि मैं आपको घृणा करूँ, इसके पहले मेरे पास घृणा होनी चाहिए। नहीं तो मैं करूँगी कहाँ से और कैसे? एक ही हृदय में प्रेम और घृणा एक साथ कैसे ठहर सकते हैं जिसका हृदय प्रेम से भर चुका है वह सिर्फ प्रेम देना जानता है। उसे यह नहीं दिखाई पड़ता कि कौन उसे प्रेम करता है और कौन घृणा। प्रेम करना उसका स्वभाव बन जाता है। उसके लिए प्रेम करना ही आनंद है। जब हृदय प्रेम से भर जाएगा तब वह घृणा करने में असमर्थ हो जाएगा।

गुरु नानकदेव की परीक्षा

एक बार गुरु नानक मुल्तान शहर पहुँचे। वहाँ के पीरों और फकीरों ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। उन लोगों ने नानकदेव के पास दूध से लबालब एक कटोरा भेजा। नानकदेव अभिप्राय समझ गये। वह यह कि जिस प्रकार इस भरे कटोरे में और एक बूँद दूध के लिए भी जगह नहीं उसी प्रकार इस शहर में पीरों और फकीरों का इतना आधिक्य है कि यहाँ तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं। नानकदेव ने इसके जवाब में उस दूध से भरे कटोरे के ऊपर गुलाब का एक फूल भेजा जिसका आशय था कि जिस प्रकार कटोरे के दूध से भरे रहने के बावजूद इसके ऊपर इस फूल को रख देने से न केवल दूध की रक्षा हो रही है बल्कि उससे सुगन्ध भी फैल रही है उसी प्रकार मेरे यहाँ आने से आपको कोई हानि नहीं पहुँचेगी, बल्कि सत्संग और ज्ञान का लाभ मिलेगा। यह देख सारे पीर और फकीर समझ गये कि वह कोई साधारण इंसान नहीं, कोई पहुँचा हुआ फकीर है। उनलोगों ने उनके पास जाकर कहा – 'आप सचमुच कोई सिद्ध पुरुष हैं! आइये, इस नगर में हमलोग आपका खुशी–खुशी स्वागत करते हैं।'

शरीर सराय की तरह है।

एक फकीर ऋषिकेश में गंगा किनारे नंगे वदन बैठे थे। उनकी जांघ में एक जबर्दस्त फोड़ा हो गया था। उसमें कीड़े रेंग रहे थे। फकीर उन कीड़ों को निहारकर बहुत खुश हो रहा था। जब कीड़े जख्म से नीचे गिर जाते थे तब फकीर उन्हें उठाकर फिर घाव के बीच रख देता था। वह दृश्य देखकर एक आदमी का दिल सिहर गया। उसने फकीर से कहा –'आप इस जख्म का इलाज क्यों नहीं कराते ? अमुक अस्पताल में साधु–संतों को मुफ्त दवा मिलती है, आप वहाँ जाकर मरहम–पट्टी करवा लें।'

फकीर ने उस आदमी से प्रसंग बदलते हुए पूछा –'आप कल कहाँ ठहरे थे ?' उसने जवाब दिया –'अमुक धर्मशाले में।' फकीर ने पूछा –'धर्मशाला में समुचित सफाई–व्यवस्था थी ? कमरे की सफेदी ठीक थी ? बिस्तरे साफ–सुथरे थे ? नालियों में गन्दगी तो नहीं थी ?'

उस आदमी ने कहा – 'धर्मशाला तो धर्मशाला ही ठहरा। वहाँ गन्दगी रहती ही है। मुझे तो रात गुजारनी थी, वहाँ की गन्दगी से क्या लेना–देना था ?'

फकीर ने कहा – 'भले आदमी, वहाँ कुछ रोज ठहरकर सफाई या मरम्मत वगैरह तो कराना चाहिए था !'

उस आदमी ने कहा – 'रात भर सिर्फ रुकना था। किराया चुकता हुआ, चलता बना। मैं वहाँ मरम्मत कराने की बेवकूफी क्यों करता ?'

फकीर ने कहा – 'भाई, तुमने जो बेवकूफी खुद नहीं की वही मुझसे करने को क्यों कहते हो ? यह शरीर कुछ दिनों के लिए मुझे रहने को मिला था। अब साँसों की पूंजी पूरी हो चुकी है। मैं इसमें रहकर अपना काम बना चुका हूँ। बहत्तर वर्ष इसमें सुख से रहा। अब कल इसे खाली कर दूँगा। इसकी मरम्मत कराकर व्यर्थ किसी का एहसान क्यों लूँ ?'

वह आदमी दूसरे दिन वहाँ गया। देखा, फकीर का मृत शरीर पड़ा था।

परमहंस की अवस्था

''काशी में एक विशुद्धानन्द परमहंस हो गये हैं। बड़े–बड़े राजे–रजवाड़े उनके शिष्य थे। वे थे भी उच्च कोटि के महापुरुष। एक बार काश्मीर के महाराजा उनका दर्शन करने गये। बाबा अकेले अपने कमरे में पलंग पर विराजमान थे। उनका रहन–सहन पलंग–गलीचे, सोने–चाँदी की वस्तुएँ, बेशकीमती कालीनें आदि देखकर राजा का दिमाग चक्कर खा गया। वे खड़े–खड़े ऊपर–नीचे उन चीजों को निहारते रहे, तभी स्वामी जी ने घंटी बजाई और उनके दो चेले खट् वहाँ पहुँच गये। उन्होंने महाराजा काश्मीर से कहा कि तुम अभी जाओ, कल बारह बजे आना तब तुम्हारा परमहंस मिलेगा। चेलों ने महाराजा को भेज दिया।''

''दूसरे दिन सबेरे ही स्वामी जी ने अपने कमरे का सारा सामान बाहर मैदान में निकलवा दिया। कुल कमरा खाली कर दिया गया और खुद वे एक लंगोटी पहने बाहर मिट्टी में बैठ गये। भक्तों को आदेश दिया कि वे शहर से भिखमंगों को बुला लायें। तुरत वहाँ सैकड़ों मंगते आ गये। स्वामी जी ने कुल सामान उन्हें दे दिये। ठीक बारह बजे राजा वहाँ आया। बाबा ने उन्हें मिट्टी में अपने साथ बैठने को कहा। बोले –'आओ, देखो ठाट से अपने परमहंस को !'

''वे देर तक उनसे सत्संग करते रहे तभी वहाँ काशी–नरेश आ गये। वे भी स्वामी जी के भक्त थे। उन्हें वह नजारा देखकर हैरानी हुई। उन्होंने तुरत आदमी भेजकर बाजार से सारे साजो–सामान मँगवाये। पहले की तरह कमरे को पलंग, कालीन, गलीचों आदि से सुसज्जित कर दिया गया तब उन्होंने स्वामी जी से वस्त्र–धारण करके वहाँ विराजमान होने की विनती की।

स्वामी जी हँसते हुए बोले– 'लो ! फिर तो तुमने मुझे अपने जैसा राजा बना ही दिया। मैंने इस बाबू को मिलने के लिए वे सारी चीजें लुटा दी थीं। कारण, इनके अनुसार परमहंस तो नंगा और दरिद्र होता है।'

काश्मीर के महाराजा ने अपनी भूल स्वीकार की और स्वामी जी से क्षमा माँगी। उनकी समझ में आ गया कि परमहंस कोई पहनावा अथवा रहन–सहन नहीं होता। वह तो विचार और वैराग्य की वैसी ऊँची धारणा है जिसके लिए इन चीजों का होना या न होना कोई महत्त्व नहीं रखता।

सज्जन और दुर्जन

एक बार नानकदेव एक गाँव में गये। साथ में उनके शिष्य मरदाना भी थे। उस गाँव के लोग नास्तिक विचारधारा के थे। उन्होंने नानकदेव का काफी तिरस्कार किया और उन्हें ढोंगी की संज्ञा दी। तब भी नानकदेव शांत रहे। दूसरे दिन जब वे वहाँ से जाने लगे तो गाँववासी उनके पास आये और कहा कि जाने से पहले कुछ आशीर्वाद तो देते जायें।

नानकदेव ने मुस्कराते हुए कहा – 'जाओ, आबाद रहो।'

वहाँ से वे दूसरे गाँव में गये। वहाँ के लोगों ने उनका उचित सत्कार किया। खूब भोज–भंडारा हुआ। नानकदेव ने उनलोगों के बीच सत्संग भी किया। जब वे विदा होने लगे तब भक्तों ने आग्रह किया कि वे कुछ आशीर्वाद देते जायें। नानकदेव बोले – 'जाओ, उजड़ जाओ।'

मरदाना को नानकदेव के विचित्र प्रकार के आशीर्वाद का आशय समझ में नहीं आया। उसने नानकदेव से पूछा – 'देव! अजीब विडम्बना है, जहाँ आपका तिरस्कार किया गया वहाँ आपने आबाद रहने का आशीर्वाद दिया और जहाँ आपका सत्कार किया गया वहाँ उजड़ जाने को कहा। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आया कि आपके ऐसा कहने का आशय क्या है ?'

नानकदेव हँसते हुए बोले – 'देखो, सज्जन लोग यदि उजड़ेंगे तो वे जहाँ भी जायेंगे, अपनी सज्जनता से चारों ओर खुशबू बिखेरेंगे, इसीलिए हमने उन्हें उजड़ जाने का आशीर्वाद दिया और दुर्जन लोग जहाँ भी जायेंगे, गंदगी चारों ओर फैलायेंगे इसलिए हमने उन्हें आबाद रहने का आशीर्वाद दिया।'

मृत्यु से पूर्व अन्तिम विदेशी पत्र प्रतिनिधि, अमेरिका की कुमारी मार्गरेट गाँधी जी से मिली। उन्होंने गाँधी जी से पूछा, 'अमरीकियों के मन भावी अनिष्ट की आशंका से त्रस्त हैं, विशेषकर अणुबम के प्रयोग के सम्बन्ध में। आप अणुबमों के विरुद्ध अहिंसा का प्रयोग कैसे कर सकते हैं?''

गाँधीजी ने उत्तर दिया, 'अणुबमों का मुकाबला प्रार्थनामय कर्मों से ही किया जा सकता है।'

कुमारी मार्गरेट ने पूछा, 'जब सिर पर हवाई जहाज मंडरा रहे हों तब आप प्रार्थना कैसे करेंगे?'

गाँधी जी ने उत्तर दिया, 'तब मैं खुले में निकल जाऊँगा और चालक को देखने दूँगा कि मेरे चेहरे पर उसके प्रति दुर्भाव का कोई चिह्न तक नहीं है। मैं जानता हूँ कि चालक उतनी ऊँचाई से मेरा चेहरा नहीं देख सकेगा, परन्तु मेरे हृदय की यह आकांक्षा कि मैं उसे हानि नहीं पहुँचाना चाहता, उस तक अवश्य पहुँच जायेगी और उसकी आँखें खुल जायेंगी।

हरिजन-प्रवास के समय एक बार गाँधी जी की रुमाल काम की भीड़ में पिछले पड़ाव पर छूट गयी। शायद किसी ने धोकर सुखा दिया था। चलते समय उसे उठाना भूल गया। गाँधी जी को उसकी जरूरत पड़ी तो उन्होंने महादेव भाई को कहा, 'मेरी रुमाल लाओ !'

महादेव भाई ने उत्तर दिया, 'अभी लाता हूँ।'

लेकिन लायें तो तब जब कहीं हो! बहुत खोजा पर नहीं मिला। आखिर गाँधी जी को इस बात की सूचना दी गयी। सुनकर कुछ क्षण वे मौन बैठे रहे, फिर पूछा, 'वह रुमाल कितने दिन और चल सकती थी?'

महादेव भाई ने उत्तर दिया, 'चार महीने तो चल ही जाती।' गाँधी जी बोले, 'तो फिर मैं चार महीने बिना रुमाल के ही चलाऊँगा। जो भूल हो गयी है, उसका यही प्रायश्चित हो सकता है। इसके बाद ही दूसरा रुमाल लेंगे।'

मेरे लिए भोजन से जरूरी सत्य की प्राप्ति

फीनिक्स-आश्रम में एक दिन एक बालक को एक शिलिंग (सिक्का) कहीं पड़ा हुआ मिला। सब विद्यार्थी सोचने लगे कि उसका क्या उपयोग किया जाय? तभी एक और विद्यार्थी को चौथाई शिलिंग का एक सिक्का और मिला। बहुमत खाने की चीजें मँगाने के पक्ष में था। इस बात की पूरी सावधानी रखी गयी कि वह बात किसी को मालूम न हो।

गाँधी जी किसी दिन अन्यत्र गये। उनके जाने के बाद एक शिलिंग की पकौड़ियाँ और चौथाई शिलिंग के कुछ चित्र मँगाये गये। उन्हें आपस में बाँट लिया गया।

कुछ दिन बाद विद्यार्थियों के दो दल हो गये। फिर तो वह बात छिपी न रह सकी। गाँधीजी तक पहुँच गयी। वे अन्यन्त गम्भीर हो उठे। उन्होंने एक अध्यापिका से, जो उसमें शामिल थीं, बहुत देर तक बातें कीं। फिर देवदास गाँधी को भी बुलाया। सब लोग बड़े चिंतित थे और बाहर खड़े थे। सहसा उन्हें लगा कि गाधीजी किसी को पीट रहे हैं। लेकिन वह तो स्वयं अपने गाल पर तमाचे लगा रहे थे। उन्हें अपार वेदना हो रही थी कि यह बात उनसे छिपाई क्यों गयी? आश्रम के वातावरण में जैसे उदासी और खिन्नता छा गयी। संध्या के समय प्रार्थना के अवसर पर गाँधीजी ने शान्त और धीमी आवाज में कहा, 'आज दोपहर में मैंने खाना खा लिया, लेकिन शाम को कुछ नहीं खाऊँगा।' पानी भी जहर सा लग रहा था। बेटे- बाप को किस हद तक धोखा दे सकता है, यह जानकर मेरा अन्तर छिद रहा था लेकिन मैं शान्त रहा। मुझे जब रहा ही नहीं गया तब मैंने अपनी गाल पर पाँच तमाचे लगा दिये। किसी और को मैं मारूँ, इससे बेहतर है कि अपने आप को ही मार लूँ। कुछ लड़के कोई बात कह रहे हैं, कुछ कोई अन्य। सच्ची बात अभी तक वे नहीं बता रहे हैं। मैंने सबसे बड़े निहोरे किये पर कोई सत्य बोलना ही नहीं चाहता। असत्य मेरे पास बना रहे तो मेरा जीवन तो मिट्टी में मिल जाय। मैंने इस बात पर बहुत मनन किया और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मेरे लिए अन्न-जल त्याग ही उचित है। जबतक लड़के स्वयं आकर सही-सही बात नहीं बतायेंगे तबतक मैं अपने मुँह में न अन्न का दाना डालूँगा, न पानी की बूँद। मेरे लिए भोजन से जरूरी सत्य की प्राप्ति है।'

दो दिन से उन्होंने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया था और तीसरे दिन कहीं बाहर जाना था। इसी तरह वे स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी में सवार हो गये तब सभी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और बहुत माफी माँगी। उन्होंने भविष्य में सदाचरण करने की शपथ ली। गाँधीजी ने उत्तर दिया, 'मेरे लिए भोजन से अधिक सत्य की प्राप्ति है। मुझे वह प्राप्त हो गया। यही मेरी असली खुराक है। आज तो अब उपवास ही करूँगा, कल भोजन कर लूँगा।'

दिल न टूटे

बाबा फरीद एक उच्च कोटि के फकीर हो गये हैं। उनके लिए एक बुढ़िया जलेबी का प्रसाद ले गयी। बाबा उस दिन व्रत में थे। उन्होंने उसकी जलेबी लौटा दी। बुढ़िया फूट-फूटकर रो पड़ी । अपने बच्चे का हाथ थाम, जलेबी लिये रोती-रोती वह घर लौटने लगी। बाबा ने पूछा- 'तुम इतना दुखी क्यों हो गयी भला? मैं अपना व्रत कैसे तोड़ूँ?'

माता ने कहा- 'बाबा, मैं अत्यन्त गरीब हूँ। आज मेरे बेटे का जन्मदिन है मेरे पास बहुतों को खिलानेभर के पैसे नही हैं, अतः सोचा कि आप जैसे सिद्ध फकीर को मिठाई खिलाकर सैकड़ों सामान्य लोगों को मिठाई खिलाने का पुण्य सहज में प्राप्त कर लूँ। किन्तु मेरी ऐसी बदनसीबी कि आज ही आपका व्रत हो आया। यही सोचकर मैं अपनी खोटी किस्मत पर रो रही हूँ।' बाबा ने झट् उसके हाथ से जलेबी ले ली और उसे खुशी से खाने लगे। माता ने कहा-'आपने मेरे लिए अपना व्रत क्यों तोड़ दिया ?'

बाबा फरीद बोले-'वैसा व्रत रखकर ही क्या होगा जिसके कारण किसी का दिल टूट जाय। दिल टूटने से व्रत टूटना अच्छा है।'

दूध और खून

एक बार नानकदेव 'लालो बढ़ई' के घर गये। उस गाँव में एक धनाढ्य व्यक्ति रहता था जिसका नाम 'मालिक भागो' था। उस दिन उसके घर भोज था। गाँव के सारे लोग वहाँ खाने गये थे। सबके खा चुकने के बाद उसने अपने नौकरों से पूछा – 'गाँव के सभी लोग खा चुके न ? कोई बाकी तो नहीं रह गया।' नौकरों ने कहा – 'सभी तो खा चुके परन्तु लालो बढ़ई के घर एक साधु आया हुआ है, उसने नहीं खाया।' यह सुनकर भागो ने गुरु नानकदेव को बुलवाया और पूछा – 'आप मेरे यहाँ खाने क्यों नहीं आए ? यहाँ इतने अच्छे–अच्छे पकवान और मिठाइयाँ बनी हैं, उस लालो के घर आपको क्या मिला होगा सूखी रोटी के अलावा ?' नानकदेव बोले – 'अच्छा, अब आया हूँ। करा लो भोजन।' भागो ने भीतर से पकवान मँगवाने को कहा। उधर नानक देव ने भी लालो से उसके घर की बनी सूखी रोटी मँगवायी। दोनों के यहाँ बनी खाद्य सामाग्रियाँ आ जाने के बाद नानक ने उस अमीर सेठ की घी में सनी हुई रोटी को हाथ में लेकर दबाया तो उससे खून निकलने लगा। उधर जब गरीब लालो की सूखी रोटी को दबाया तो उसमें से दूध निकलने लगा। यह देख वहाँ उपस्थित लोग आश्चर्यचकित हो गए। नानकदेव ने बताया – 'भागो ने गरीबों को लूटा है, इसीलिए इसकी रोटी में गरीबों का खून है। उधर लालो ने अपनी ईमानदारी से कमाया है अतः उसकी रोटी से दूध निकला।'

सच्चा देशभक्त

महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले के काटलुक गांव में एक प्राईमरी स्कूल था। कक्षा चल रही थी। अध्यापक ने बच्चों से एक प्रश्न किया यदि तुम्हें रास्ते में एक हीरा मिल जाए तो तुम उसका क्या करोगे?

मैं इसे बेच कर कार खरीदूंगा एक बालक ने कहा। एक ने कहा, मैं उसे बेच कर धनवान बन जाउंगा। किसी ने कहा कि वह उसे बेच विदेश यात्रा करेगा।

चौथे बालक का उत्तर था कि, मैं उस हीरे के मालिक का पता लगा कर लौटा दूंगा। अध्यापक चकित थे, फिर उन्होंने कहा कि, मानो खूब पता लगाने पर भी उसका मालिक न मिला तो? बालक बोला, तब मैं हीरे को बेचूंगा और इससे मिले पैसे को देश की सेवा में लगा दूंगा। शिक्षक बालक का उत्तर सुन कर गद्गद् हो गये और बोले, शाबास तुम बडे होकर सचमुच देशभक्त बनोगे। शिक्षक का कहा सत्य हुआ और वह बालक बडा होकर सचमुच देशभक्त बना, उसका नाम था, गोपाल कृष्ण गोखले।

विवेक

यूनान के प्रसिध्द दार्शनिक सुकरात एक बार अपने शिष्यों के साथ चर्चा में मग्न थे। उसी समय एक ज्योतिष घूमता-घामता पहुंचा, जो कि चेहरा देख कर व्यक्ति के चरित्र के बारे में बताने का दावा करता था। सुकरात व उनके शिष्यों के समक्ष यही दावा करने लगा। चूंकि सुकरात जितने अच्छे दार्शनिक थे उतने सुदर्शन नहीं थे, बल्कि वे बदसूरत ही थे। पर लोग उन्हें उनके सुन्दर विचारों की वजह से अधिक चाहते थे।

ज्योतिषी सुकरात का चेहरा देखकर कहने लगा, इसके नथुनों की बनावट बता रही है कि इस व्यक्ति में क्रोध की भावना प्रबल है।
यह सुन कर सुकरात के शिष्य नाराज होने लगे परन्तु सुकरात ने उन्हें रोक कर ज्योतिष को अपनी बात कहने का पूरा मौका दिया।

"इसके माथे और सिर की आकृति के कारण यह निश्चित रूप से लालची होगा। इसकी ठोडी क़ी रचना कहती है कि यह बिलकुल सनकी है, इसके होंठों और दांतों की बनावट के अनुसार यह व्यक्ति सदैव देशद्रोह करने के लिये प्रेरित रहता है।

यह सब सुन कर सुकरात ने ज्योतिषी को इनाम देकर भेज दिया, इस पर सुकरात के शिष्य भौंचक्के रह गये।सुकरात ने उनकी जिज्ञासा शांत करने के लिये कहा कि, सत्य को दबाना ठीक नहीं। ज्योतिषी ने जो कुछ बताया वे सब दुर्गुण मुझमें हैं, मैं उन्हें स्वीकारता हूँ। पर उस ज्योतिषी से एक भूल अवश्य हुई है, वह यह कि उसने मेरे विवेक की शक्ति पर जरा भी गौर नहीं किया। मैं अपने विवेक से इन सब दुर्गुणों पर अंकुश लगाये रखता हूँ। यह बात ज्योतिषी बताना भूल गया। शिष्य सुकरात की विलक्षणता से और प्रभावित हो गये।

कर्तव्य

विश्वविजित होने का स्वप्न देखने वाले सिकन्दर और उनके गुरु अरस्तू एक बार घने जंगल में कहीं जा रहे थे। रास्ते में उफनता हुआ एक बरसाती नाला पडा।
अरस्तू और सिकन्दर इस बात पर एकमत न हो सके कि पहले कौन नाला पार करे। उस पर वह रास्ता अनजान था, नाले की गहराई से दोनों नावाकिफ थे। कुछ देर विचार करने के बाद सिकन्दर इस बात पर ठान बैठे कि नाला तो पहले वह स्वयं ही पार करेंगे। कुछ देर के वाद विवाद के बाद अरस्तू ने सिकन्दर की बात मान ली। पर बाद में वे इस बात पर नाराज हो गये कि तुमने मेरी अवज्ञा की तो क्यों की। इस पर सिकन्दर ने एक ही बात कही, मेरे मान्यवर गुरु जी, मेरे कर्तव्य ने ही मुझे ऐसा करने को प्रेरित किया। क्योंकि अरस्तू रहेगा तो हजारों सिकन्दर तैयार कर लेगा। पर सिकन्दर तो एक भी अरस्तू नहीं बना सकता।

गुरु शिष्य के इस उत्तर पर मुस्कुरा कर निरुत्तर हो गये।

गाली के बदले प्यार

कर्णवास का एक पंडित महर्षि दयानंद सरस्वती को प्रतिदिन गालियाँ दिया करता था, पर महर्षि शांत भाव से उन्हें सुनते रहते और उसे कुछ भी उत्तर न देते।

एक दिन जब वह गाली देने नहीं आया तब महर्षि ने लोगों से उसके न आने का कारण पूछा। लोगों ने बताया, "वह बीमार है।"

महर्षि फल और औषध लेकर उसके घर पहुँचे। वह महर्षि को देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा और अपने असद व्यवहार के लिए क्षमा माँगने लगा। इसके बाद उसका गाली देना सदा के लिए छूट गया।

स्वर्ग और नरक

एक युवक था। वह बंदूक और तलवार चलाना सीख रहा था। इसलिए वह यदा-कदा जंगल जाकर खरगोश, लोमड़ी और पक्षियों आदि का शिकार करता। शिकार करते-करते उसे यह घमंड हो गया कि उसके जैसा निशानेबाज़ कोई नहीं है और न उसके जैसा कोई तलवार चलाने वाला। आगे चलकर वह इतना घमंडी हो गया कि किसी बड़े के प्रति शिष्टाचार भी भूल गया।

उसके गाँव के बाहर कुटिया में एक संत रहते थे। वह एक दिन उनके पास पहुँचा। न उन्हें प्रणाम किया और न ही अपना परिचय दिया। सीधे उनके सामने पड़े आसन पर बैठ गया और कहने लगा, 'लोग बेकार में स्वर्ग-नरक में विश्वास करते हैं?

संत ने उससे पूछा, 'तुम तलवार साथ में क्यों रखते हो?'

उसने कहा, 'मुझे सेना में भर्ती होना है, कर्नल बनना है।'

इस पर संत ने कहा, 'तुम्हारे जैसे लोग सेना में भर्ती किए जाते हैं? पहले अपनी शक्ल शीशे में जाकर देख लो।'

यह सुनते ही युवक गुस्से में आ गया और उसने म्यान से तलवार निकाल ली। तब संत ने फिर कहा, 'वाह! तुम्हारी तलवार भी कैसी है? इससे तुम किसी भी बहादुर आदमी का सामना नहीं कर सकते, क्योंकि वीरों की तलवार की चमक कुछ और ही होती है।'

फिर तो युवक गुस्से से आग-बबूला हो गया और संत को मारने के लिए झपटा। तब संत ने शांत स्वर से कहा, 'अब तुम्हारे लिए नरक का दरवाज़ा खुल गया।'

यह सुनते ही युवक की अक्ल खुल गई और उसने तलवार म्यान में रख ली। अब वह सर झुककर संत के सामने खड़ा था और अपराधी जैसा भाव दिखा रहा था। इस पर संत ने कहा, 'अब तुम्हारे लिए स्वर्ग का दरवाज़ा खुल गया।'

असंभव कुछ भी नहीं है-

असंभव कुछ भी नहीं है- यह वाक्य है फ्राँस के नेपोलियन बोनापार्ट का, जो एक गरीब कुटुंब में जन्मा था, परन्तु प्रबल पुरूषार्थ और दृढ़ संकल्प के कारण एक सैनिक की नौकरी में से फ्राँस का शहंशाह बन गया। ऐसी ही संकल्पशक्ति का दूसरा उदाहरण है संत विनोबा भावे।

बचपन में विनोबा गली में सब बच्चों के साथ खेल रहे थे। वहाँ बातें चली कि अपनी पीढ़ी में कौन-कौन संत बन गये। प्रत्येक बालक ने अपनी पीढ़ी में किसी न किसी पूर्वज का नाम संत के रूप में बताया। अंत में विनोबा जी की बारी आयी। विनोबा ने तब तक कुछ नहीं कहा परन्तु उन्होंने मन-ही-मन दृढ़ संकल्प करके जाहिर किया कि, अगर मेरी पीढ़ी में कोई संत नहीं बना तो मैं स्वयं संत बनकर दिखाऊँगा। अपने इस संकल्प की सिद्धि के लिए उन्होंने प्रखर पुरूषार्थ शुरु कर दिया। लग गये इसकी सिद्धि में और अंत में, एक महान संत के रूप में प्रसिद्ध हुए। यह है दृढ़संकल्पशक्ति और प्रबल पुरूथार्थ का परिणाम। इसलिए दुर्बल नकारात्मक विचार छोड़कर उच्च संकल्प करके प्रबल पुरूषार्थ में लग जाओ, सामर्थ्य का खजाना तुम्हारे पास ही है। सफलता अवश्य तुम्हारे कदम चूमेगी।

सब कर्मो का फल है

एक बार देवर्षि नारद अपने शिष्य तुम्बुरु के साथ कही जा रहे थे गर्मियों के दिन थे एक प्याऊ से उन्होंने पानी पिया और पीपल के पेड़ की छाया में जा बैठे इतने में एक कसाई वहा से २५-३० बकरों को लेकर गुजरा उसमे से एक बकरा एक दुकान पर चढ़कर मोठ खाने लपक पड़ा उस दुकान पर नाम लिखा था- 'शागाल्चंद सेठ ' दुकानदार का बकरे पर ध्यान जाते ही उसने बकरे के कान पकड़कर दो-चार घुसे मार दिए बकरा 'बै.... बै....' करने लगा और उसके मुह में से सारे मोठ गिर पड़े फिर कसाई को बकरा पकड़ते हुए कहा : "जब इस बकरे को तू हलाल करेगा तो इसकी मुंडी मेरे को देना क्योकि यह मेरे मोठ खा गया है देवर्षि नारद ने जरा सा ध्यान लगा कर देखा और जोर से हँस पड़े तुम्बुरु पूछने लगा : "गुरूजी ! आप क्यों हँसे ? उस बकरे को जब घूँसे पड़ रहे थे तब तो आप दू:खी हो गए थे, किन्तु ध्यान करने के बाद आप हँस पड़े इससे क्या रहस्य है ?"नारदजी ने कहा : "छोड़ो भी..... यह तो सब कर्मो का फल है, छोड़ो ""नहीं गुरूजी ! कृपा करके बताइए ""इस दुकान पर जो नाम लिखा है 'शागाल्चंद सेठ' - वह शागाल्चंद सेठ स्वयं यह बकरा होकर आया है यह दुकानदार शागाल्चंद सेठ का ही पुत्र है सेठ मरकर बकरा हुआ है और इस दुकान से अपना पुराना सम्बन्ध समझकर इस पर मोठ खाने गया उसके बेटे ने ही उसको मारकर भगा दिया मैंने देखा की ३० बकरों में से कोई दुकान पर नहीं गया फिर यह क्यों गया कम्बख्त ? इसलिए ध्यान करके देखा तो पता चला की इसका पुराना सम्बन्ध था जिस बेटे के लिए शागाल्चंद सेठ ने इतना कमाया था, वही बेटा मोठ के चार दाने भी नहीं खाने देता और गलती से खा लिए तो मुंडी मांग रहा है बाप की इसलिए कर्म की गति और मनुष्य के मोह पर मुझे हँसी आ रही है कि अपने-अपने कर्मो का फल तो प्रत्येक प्राणी को भोगना ही पड़ता और इस जन्म के रिश्ते-नाते मृत्यु के साथ ही मिट जाते है, कोई काम नहीं आता "

संकटग्रस्त व्यक्ति की सहायता करना श्रेष्ठ कार्य है।

एक राजा जिस साधु-संत से मिलता, उनसे तीन प्रश्न पूछता। पहला- कौन व्यक्ति श्रेष्ठ है? दूसरा- कौन सा समय श्रेष्ठ है? और तीसरा- कौन सा कार्य श्रेष्ठ है? सब लोग उन प्रश्नों के अलग-अलग उत्तर देते, किंतु राजा को उनके जवाब से संतुष्टि नहीं होती थी। एक दिन वह शिकार करने जंगल में गया। इस दौरान वह थक गया, उसे भूख-प्यास सताने लगी। भटकते हुए वह एक आश्रम में पहुंचा। उस समय आश्रम में रहने वाले संत आश्रम के फूल-पौधों को पानी दे रहे थे। राजा को देख उन्होंने अपना काम फौरन रोक दिया। वह राजा को आदर के साथ अंदर ले आए। फिर उन्होंने राजा को खाने के लिए मीठे फल दिए। तभी एक व्यक्ति अपने साथ एक घायल युवक को लेकर आश्रम में आया। उसके घावों से खून बह रहा था। संत तुरंत उसकी सेवा में जुट गए। संत की सेवा से युवक को बहुत आराम मिला। राजा ने जाने से पहले उस संत से भी वही प्रश्न पूछे। संत ने कहा, 'आप के तीनों प्रश्नों का उत्तर तो मैंने अपने व्यवहार से अभी-अभी दे दिया है।'राजा कुछ समझ नहीं पाया। उसने निवेदन किया, 'महाराज, मैं कुछ समझा नहीं। स्पष्ट रूप से बताने की कृपा करें।' संत ने राजा को समझाते हुए कहा, 'राजन्, जिस समय आप आश्रम में आए मैं पौधों को पानी दे रहा था। वह मेरा धर्म है। लेकिन आश्रम में अतिथि के रूप में आने पर आपका आदर सत्कार करना मेरा प्रधान कर्तव्य था। आप अतिथि के रूप में मेरे लिए श्रेष्ठ व्यक्ति थे। पर इसी बीच आश्रम में घायल व्यक्ति आ गया। उस समय उस संकटग्रस्त व्यक्ति की पीड़ा का निवारण करना भी मेरा कर्तव्य था, मैंने उसकी सेवा की और उसे राहत पहुंचाई। संकटग्रस्त व्यक्ति की सहायता करना श्रेष्ठ कार्य है। इसी तरह हमारे पास आने वालों के आदर सत्कार करने का, उनकी सेवा-सहायता करने का समय ही श्रेष्ठ है।' राजा संतुष्ट हो गया।

सत्शिष्य

भगवान बुद्ध ने एक बार घोषणा की किः "अब महानिर्वाण का समय नजदीक आ रहा है। धर्मसंघ के जो सेनापति हैं,कोषाध्यक्ष हैं, प्रचार मंत्री हैं, व्यवस्थापक हैं तथा अन्य सब भिक्षुक बैठे हैं उन सबमें से जो मेरा पट्टशिष्य होना चाहता हो, जिसको मैं अपनाविशेष शिष्य घोषित कर सकूँ ऐसा व्यक्ति उठे और आगे आ जाये।"बुद्ध का विशेष शिष्य होने के लिए कौन इन्कार करे ? सबके मन में हुआ कि भगवान का विशेष शिष्य बनने से विशेष मान मिलेगा, विशेष पद मिलेगा, विशेष वस्त्र और भिक्षा मिलेगी। एक होते हैं मेवाभगत और दूसरे होते हैं सेवाभगत। गुरू का मान हो, यश हो,चारों और बोलबाला हो तब तो गुरू के चेले बहुत होंगे। जब गुरू के ऊपर कीचड़ उछाला जायेगा, कठिन समय आयेगा तब मेवाभगत पलायन हो जाएँगे, सेवाभगत ही टिकेंगे। बुद्ध के सामने सब मेवाभगत सत्शिष्य होने के लिये अपनी ऊँगली एक के बादएक उठाने लगे। बुद्ध सबको इन्कार करते गये। उनको अपना विशेष उत्तराधिकारी होने के लिए कोई योग्य नहीं जान पड़ा। प्रचारमंत्री खड़ा हुआ। बुद्ध ने इशारे से मना किया। कोषाध्यक्ष खड़ा हुआ। बुद्ध राजी नहीं हुए। सबकी बारी आ गई फिर भी आनन्द नहीं उठा। अन्य भिक्षुओं ने घुस-पुस करके समझाया कि भगवान के संतोष के खातिर तुम उम्मीदवार हो जाओ मगर आनन्द खामोश रहा। आखिरबुद्ध बोल उठेः "आनन्द क्यों नहीं उठता है ?" आनन्द बोलाः "मैं आपके चरणों में आऊँ तो जरूर, आपके कृपापात्र के रूप मेंतिलक तो करवा लूँ लेकिन मैं आपसे चार वरदान चाहता हूँ। बाद में आपका सत्शिष्य बन पाऊँगा।" "वे चार वरदान कौन-से हैं ?" बुद्ध ने पूछा। "आपको जो बढ़िया भोजन मिले, भिक्षा ग्रहण करने के लिए निमंत्रण मिले उसमें मेरा प्रवेश न हो। आपका जो बढ़िया विशेष आवास हो उसमें मेरा निवास न हो। आपको जो भेंट-पूजा और आदर-मान मिले उस समय मैं वहाँ से दूर रहूँ।आपकी जहाँ पूजा-प्रतिष्ठा होती हो वहाँ मुझे आपके सत्शिष्य के रूप मेघोषित न किया जाए। इस ढंग से रहने की आज्ञा हो तो मैं सदा के लिए आपके चरणों में अर्पित हूँ।" आज भी लोग आनन्द को आदर से याद करते हैं।

एक-एक चीज राष्ट्र की संपत्ति है।

गांधीजी जेल में बंद थे । वहां की बदइंतजामी से क्षुब्ध होकर कर उन्होंने अनशन शुरू कर दिया। एक दिन वह तख्त पर बैठे-बैठे लोगों से बातें कर रहे थे।

पास में अंगीठी पर पानी गर्म हो रहा था। पानी जब खौलने लगा तब पतीले को नीचे उतारा गया। मगर अंगीठी जलती ही रही। थोड़ी देर बाद गांधी जी ने पूछा, 'अब इस अंगीठी पर क्या रखा जाएगा?' किसी ने कहा, 'कोई काम नहीं है।'

गांधीजी ने कहा, 'फिर यह बेकार में क्यों जल रही है। इसे बुझा दो।' पास बैठे जेलर ने कहा, 'जलने दीजिए, क्या फर्क पड़ता है। यहां का कोयला सरकारी है।' उसका जवाब सुन कर गांधी जी को गुस्सा आ गया। बोले, 'तुम भी सरकारी हो। क्या तुम्हें भी जलने दिया जाए।'

फिर उन्होंने जेलर को समझाया, 'भाई, कोई चीज सरकारी नहीं होती। यहां की एक-एक चीज राष्ट्र की संपत्ति है। उन सभी पर जनता का हक है। किसी वस्तु का नुकसान जनता का नुकसान है। आप कैसे जनता के सेवक हैं। आपको तो समझना चाहिए कि जिस वस्तु को आप सरकारी मान कर बर्बाद कर रहे हैं वही किसी जरूरतमंद को जिंदगी दे सकती है।' जेलर अपनी गलती के लिए गांधीजी से माफी मांगने लगा। गांधीजी ने कहा, 'माफी क्यों मांगते हो। तुम्हें तो वचन देना चाहिए कि तुम्हारे सामने कोई वस्तु इस तरह बर्बाद नहीं होगी। यह ठीक है कि हम परतंत्र हैं मगर यहां के एक-एक कण पर भारतीयों का अधिकार है।' जेलर ने तत्काल अंगीठी बुझा दी।

शिक्षा का महत्व

एक बार महाराष्ट्र के विख्यात संत गाडगे जी महाराज कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक वृद्ध सज्जन अपने हाथ में चिट्ठी लिए हुए घूम रहे थे और सबसे उसे पढ़ने का निवेदन कर रहे थे। मगर लोग अपने-अपने कार्यों में इस तरह व्यस्त थे कि उस वृद्ध की तरफ किसी का ध्यान ही नहीं जा रहा था। उसकी चिट्ठी पढ़ना तो बहुत दूर की बात थी। एकाध व्यक्ति ने देखा भी तो मुंह बनाकर चल पड़ा। वृद्ध की ऐसी हालत देखकर संत गाडगे जी महाराज से नहीं रहा गया। वह उनके पास पहुंच कर उनसे बातें करने लगे। वृद्ध ने उनसे भी चिट्ठी पढ़ने का अनुरोध किया। संत गाडगे जी के साथ उनके एक शिष्य भी वहीं मौजूद थे। गाडगे जी का संकेत पाकर शिष्य ने वृद्ध को चिट्ठी पढ़कर सुनाई। चिट्ठी पढ़वाने के बाद जब वृद्ध गाडगे जी महाराज का धन्यवाद करके जाने लगे तो उन्होंने वृद्ध से कहा, 'बाबा, आप अपने घर के बच्चों को स्कूल भेजते हो या नहीं? यदि आप अपने बच्चों को अभी भी नहीं पढ़ाएंगे तो उन्हें भी भविष्य में आप ही की तरह अपनी चिट्ठी पढ़वाने के लिए लोगों की मिन्नत करनी पड़ेगी, उनके हाथ-पैर जोड़ने पड़ेंगे। इतने पर भी पता नहीं कि कोई उन्हें चिट्ठी पढ़कर सुनाएगा भी या नहीं।' संत गाडगे जी महाराज की बात सुनकर वृद्ध अत्यंत लज्जित हुए और बोले, 'महाराज, आज आपने मेरी आंखें खोल दी हैं और मुझे शिक्षा की अहमियत बता दी है। मैं अब अपने बच्चों को तो पढ़ाऊंगा ही साथ ही खुद भी पढ़ने की कोशिश करूंगा।' उसका जवाब सुनकर संत गाडगे जी बहुत खुश हुए और बोले, 'बाबा, आपका फैसला बिल्कुल सही है। नेक कर्म व अच्छी चीज ग्रहण करने की कोई उम्र नहीं होती, उसे किसी भी उम्र में ग्रहण किया जा सकता है। जब जागो तभी सवेरा।' यह कहकर उन्होंने उस वृद्ध को शुभकामनाएं दीं और सत्संग करने के लिए चल पड़े।

मत कर रे गरव गुमान गुलाबी रंग उड़ी जावेलो

बुद्ध के जमाने में एक विश्व-सुन्दरी हुई थी। उसका नाम भी थाविश्वसुन्दरी और वास्तव में वह विश्वसुन्दरी थी। बहुत गर्विष्ठ। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, उसकी मुलाकात के लिए लालायित रहते थे। वह किसी को दाद नहीं देती थी। 16-17 साल की उसकी उम्र थी। बहुत ही सुन्दर थी वह। बुद्ध को पता चला। उसको अपने पास बुलाया और कहाः "सामने खड़ी हो जा।" सुन्दरी एक-दो मिन्ट खड़ी रही फिर बोलीः "भन्ते ! क्या आज्ञा है ?" "आज्ञा यह है कि तू खड़ी रह।" बुद्ध दक्ष थे। अपने निर्वाण स्वरूप में विश्रांति पाये हुए थे। इच्छा- वासना से परे थे। कोई अपेक्षा नहीं थी उस सुन्दरी से सुख लेने की। आदमी जितनी निरपेक्ष होता है उतना उसका संकल्पबल और आत्मबल कार्यान्वित होता है। जितनी अपेक्षाएँ अधिक उतना संकल्प बल क्षीण, Will power down.बुद्ध ने अपने संकल्प का जोर लगाया। सुन्दरी सामने खड़ी है, स्थिर..... शांत...। महसूस करने लगी कि मैं 17 साल में से बीस साल की हो गई.... पच्चीस की हो गई.... थोड़ी देर बाद देखती है तो अपनी उम्र और बढ़ रही है... तीस साल की हुई है... चालीस साल की हुई.... पैंतालीस की हुई....यौवन शिथिल हो गया.... तन पर बुढ़ापे के चिह्न उभर आये। सुन्दरी दंग रह गई। क्या अजीब सा अनुभव हो रहा है ! आश्चर्य !! कुछ क्षण और बीते। वह महसूस करने लगी कि वह पचास की हो गई... पचपन की होगई... साठ की हो गई... बाल सफेद हो गये हैं.... दाँत गिर पड़े हैं....मुँह खोखला हो गया है.... चेहरे पर झुर्रियाँ फैल गई हैं..... कमर झुक गई है... हाथ में लकड़ी आ गई है..... मुँह फटे टाट जैसा हो रहा है। सत्तर साल की हुई... आँखों से पानी टपक रहा है.... नाक टेढ़ा हो गया है। वह चकराई। "अरे ! मुझे यह क्या हो रहा है ? आपने मुझे क्या दिया ?" बुद्ध मुस्करायेः "मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ। जो आगे होने वाला है वह अभी दिख रहा है। तू जिस यौवन का आज गर्व कर रही है, विश्व-सुन्दरी होकर प्रसिद्ध हो रही है वह चमड़े का सौन्दर्य आखिर कब तक ?" रूप दिसी मगरूर न थी हुसन ते एतरो नाज न कर। रूप सभ संवलजा अथई रांवलजा आहिन् रंग घणा।। मत कर रे गरव गुमान गुलाबी रंग उड़ी जावेलो।'तू अपनी देह की आकृति पर, हाड़-मांस-चाम के देह की सुन्दरता पर गर्व करके जवानी बरबाद न कर। आखिर इस देह का कैसा हाल होने वाला है यह देख ले अभी से। सावधान हो जा। चार दिन की जवानी पर नाज मत

मुझे तो असली तत्त्व का ज्ञान दे दो।

एक बार किसी भक्त ने भक्ति की। उसकी दृढ़ भावना थी कि भगवान साकार रूप में दर्शन दें और मैं उनसे बातचीत कर सकूँ। भक्ति करते-करते उसके समक्ष एक बार भगवान साकार रूप लेकर आ गये और बोलेः "वरं ब्रूयात्।' वर माँग। भक्तः "वरदान क्या माँगूँ? मुझे तो असली तत्त्व का ज्ञान दे दो। जो सबसे बढ़िया हो वह दे दो।" भगवानः "बढ़िया से बढ़िया है आत्मज्ञान। मेरे दर्शन का परम फल भी यही है कि जीव अपने स्वरूप का ज्ञान, आत्मज्ञान पा ले। मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पावहि निज सहज सरूपा।। मेरे दर्शन का यही अनुपम फल है कि जीव अपने सहज स्वरूप को पा ले।" भक्तः "मेरा सहज स्वरूप क्या है?" भगवानः "मेरा सहज स्वरूप है, वही तुम्हारा है।" भक्तः "भगवान भगवान ! आप तो सृष्टि की उत्पत्ति कर लेते हो, पालन करते हो और प्रलय करते हो। हम तो कुछ नहीं कर सकते तो आप और हम एक कैसे हुए?" भगवानः "तुम्हारा यह साधारण शरीर और मेरा यह मायाविशिष्ट स्वरूप इन दोनों को छोड़ दो। बाकी जो तुम चैतन्य हो वही मैं हूँ और जिसकी सत्ता से मेरी आँखें देखती हैं उसी की सत्ता से ही तुम्हारी आँखें भी देखती हैं।" भक्तः "भगवान ! आप तो सर्वशक्तिमान हैं और हममें तो कोई शक्ति नहीं है। फिर आप और हम एक कैसे? आप तो सृष्टि बना सकते हैं लेकि हम नहीं बना सकते?"भगवानः "अच्छा ! आज के बाद जाग्रत की सृष्टि का संकल्प मैं करूँगा तब जाग्रत की सृष्टि बनेगी और स्वप्न की सृष्टि तुम बनाओगे।" तब से इस जीव को स्वप्न आने लगे। जैसे स्वप्न में सब बनाकर भी आप उससे अलग रहते हो वैसे ही जाग्रत में सब देखते हुए भी आप सबसे अलग, सबसे न्यारे हो। जैसे स्वप्न से उठने पर पता चलता है कि 'सब आपका खिलवाड़ ही था' ऐसे ही यह जगत भी वास्तव में आपके चैतन्य का ही रूपान्तरण है। यह अगर समझ में आ जाये तो महाराज ! ऑफिसर के रूप में मैं ही आदेश दे रहा हूँ और कार्यकर्ता के रूप में मैं ही आदेश मान रहा हूँ। धनवानों में भी मैं ही हूँ और सत्तावानों में भी मैं ही हूँ....' इस प्रकार का अनुभव हो जायेगा। अगर यह अनुभव हो गया तो ब्रहमलोक तक के जीवों में भी जो उच्च पद हैं उन सब पदों का भोग ब्रहमवेत्ता एक ही साथ भोग लेते हैं। आपका शरीर सब भोग एक साथ नहीं भोग सकता लेकिन सबके शरीर में आप ही हो। यह अनुभव हो जाए तो सब भोग आप ही तो भोग रहे हो।

प्रेम कभी अकेला नहीं जाता

एक दिन एक औरत अपने घर के बाहर आई और उसने तीन संतों को अपने घर के सामने देखा। वह उन्हें जानती नहीं थी। औरत ने कहा – “कृपया भीतर आइये और भोजन करिए।”

संत बोले – “क्या तुम्हारे पति घर पर हैं?”

औरत ने कहा – “नहीं, वे अभी बाहर गए हैं।”

संत बोले – “हम तभी भीतर आयेंगे जब वह घर पर हों।”

शाम को उस औरत का पति घर आया और औरत ने उसे यह सब बताया।

औरत के पति ने कहा – “जाओ और उनसे कहो कि मैं घर आ गया हूँ और उनको आदर सहित बुलाओ।”

औरत बाहर गई और उनको भीतर आने के लिए कहा।

संत बोले – “हम सब किसी भी घर में एक साथ नहीं जाते।”

“पर क्यों?” – औरत ने पूछा।

उनमें से एक संत ने कहा – “मेरा नाम धन है” – फ़िर दूसरे संतों की ओर इशारा कर के कहा – “इन दोनों के नाम सफलता और प्रेम हैं। हममें से कोई एक ही भीतर आ सकता है। आप घर के अन्य सदस्यों से मिलकर तय कर लें कि भीतर किसे निमंत्रित करना है।”

औरत ने भीतर जाकर अपने पति को यह सब बताया। उसका पति बहुत प्रसन्न हो गया और बोला – "यदि ऐसा है तो हमें धन को आमंत्रित करना चाहिए। हमारा घर खुशियों से भर जाएगा।"

लेकिन उसकी पत्नी ने कहा – "मुझे लगता है कि हमें सफलता को आमंत्रित करना चाहिए।"

उनकी बेटी दूसरे कमरे से यह सब सुन रही थी। वह उनके पास आई और बोली – "मुझे लगता है कि हमें प्रेम को आमंत्रित करना चाहिए। प्रेम से बढ़कर कुछ भी नहीं हैं।"

"तुम ठीक कहती हो, हमें प्रेम को ही बुलाना चाहिए" – उसके माता-पिता ने कहा।

औरत घर के बाहर गई और उसने संतों से पूछा – "आप में से जिनका नाम प्रेम है वे कृपया घर में प्रवेश कर भोजन गृहण करें।"

प्रेम घर की ओर बढ़ चले। बाकी के दो संत भी उनके पीछे चलने लगे।

औरत ने आश्चर्य से उन दोनों से पूछा – "मैंने तो सिर्फ़ प्रेम को आमंत्रित किया था। आप लोग भीतर क्यों जा रहे हैं?"

उनमें से एक ने कहा – "यदि आपने धन और सफलता में से किसी एक को आमंत्रित किया होता तो केवल वही भीतर जाता। आपने प्रेम को आमंत्रित किया है। प्रेम कभी अकेला नहीं जाता। प्रेम जहाँ-जहाँ जाता है, धन और सफलता उसके पीछे जाते हैं।"

सद्गुणों में संतुलन

एक दिन एक धनी व्यापारी ने लाओ-त्ज़ु से पूछा – "आपका शिष्य येन कैसा व्यक्ति है?"

लाओ-त्ज़ु ने उत्तर दिया – "उदारता में वह मुझसे श्रेष्ठ है।"

"आपका शिष्य कुंग कैसा व्यक्ति है?" – व्यापारी ने फ़िर पूछा।

लाओ-त्ज़ु ने कहा – "मेरी वाणी में उतना सौन्दर्य नहीं है जितना उसकी वाणी में है।"

व्यापारी ने फ़िर पूछा – "और आपका शिष्य चांग कैसा व्यक्ति है?"

लाओ-त्ज़ु ने उत्तर दिया – "मैं उसके समान साहसी नहीं हूँ।"

व्यापारी चकित हो गया, फ़िर बोला – "यदि आपके शिष्य किन्हीं गुणों में आपसे श्रेष्ठ हैं तो वे आपके शिष्य क्यों हैं? ऐसे में तो उनको आपका गुरु होना चाहिए और आपको उनका शिष्य!"

लाओ-त्ज़ु ने मुस्कुराते हुए कहा – "वे सभी मेरे शिष्य इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने मुझे गुरु के रूप में स्वीकार किया है। और उन्होंने ऐसा इसलिए किया है क्योंकि वे यह जानते हैं कि किसी सद्गुण विशेष में श्रेष्ठ होने का अर्थ ज्ञानी होना नहीं है।"

"तो फ़िर ज्ञानी कौन है?" – व्यापारी ने प्रश्न किया।

लाओ-त्ज़ु ने उत्तर दिया – "वह जिसने सभी सद्गुणों में पूर्ण संतुलन स्थापित कर लिया हो।"

सुकरात की पत्नी

सुकरात को पश्चिमी विद्वानों ने महान यूनानी दार्शनिक माना है, संत नहीं। दूसरी और, हम भारतवासियों ने उनमें आत्मस्थित दृष्टा की छवि देखी और उन्हें संतों की कोटि में रखा। आश्चर्य होता है कि आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व के संसार में सुकरात जैसा क्रन्तिकारी व्यक्तित्व हुआ जिसने मृत्यु का वरण करना स्वीकार किया लेकिन अपने दर्शन की अवज्ञा नहीं की।

सुकरात की पत्नी जेंथीप बहुत झगड़ालू और कर्कशा थी। एक दिन सुकरात अपने शिष्यों के साथ किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। वे घर के बाहर धूप में बैठे हुए थे। भीतर से जेंथीप ने उन्हें कुछ कहने के लिए आवाज़ लगाई। सुकरात ज्ञानचर्चा में इतने खोये हुए थे कि जेंथीप के बुलाने पर उनका ध्यान नहीं गया। दो-तीन बार आवाज़ लगाने पर भी जब सुकरात घर में नहीं आए तो जेंथीप भीतर से एक घड़ा भर पानी लाई और सुकरात पर उड़ेल दिया। वहां स्थित हर कोई स्तब्ध रह गया लेकिन सुकरात पानी से तरबतर बैठे मुस्कुरा रहे थे। वे बोले:

"मेरी पत्नी मुझसे इतना प्रेम करती है कि उसने इतनी गर्मी से मुझे राहत देने के लिए मुझपर पानी डाल दिया है।"

सुकरात का एक शिष्य इस पशोपेश में था कि उसे विवाह करना चाहिए या नहीं करना चाहिए। वह सुकरात से इस विषय पर सलाह लेने के लिए आया। सुकरात ने उससे कहा कि उसे विवाह कर लेना चाहिए।
शिष्य यह सुनकर हैरान था। वह बोला – "आपकी पत्नी तो इतनी झगड़ालू है कि उसने आपका जीना दूभर किया हुआ है, फ़िर भी आप मुझे विवाह कर लेने की सलाह दे रहे हैं?"

सुकरात ने कहा – "यदि विवाह के बाद तुम्हें बहुत अच्छी पत्नी मिलती है तो तुम्हारा जीवन संवर जाएगा क्योंकि वह तुम्हारे जीवन में खुशियाँ लाएगी। तुम खुश रहोगे तो जीवन में उन्नति करोगे और रचनाशील बनोगे। यदि तुम्हें जेंथीप की तरह पत्नी मिली तो तुम भी मेरी तरह दार्शनिक तो बन ही जाओगे! किसी भी परिस्तिथि में विवाह करना तुम्हारे लिए घाटे का सौदा नहीं होगा।"

पेंसिल और इरेज़र

इस ब्लॉग के नियमित पाठक और सम्माननीय टिप्पणीकार श्री जी विश्वनाथ जी ने कुछ दिनों पूर्व मुझे एक ईमेल फौरवर्ड भेजा. उसे मैं यहाँ अनूदित करके पोस्ट कर रहा हूँ. आपको धन्यवाद, विश्वनाथ जी!
एक दिन एक पेंसिल ने इरेज़र (रबर) से कहा – "मुझे माफ़ कर दो…"

इरेज़र ने कहा – "क्यों? क्या हुआ? तुमने तो कुछ भी गलत नहीं किया!"

पेंसिल बोली – "मुझे यह देखकर दुःख होता है कि तुम्हें मेरे कारण चोट पहुँचती है. जब कभी मैं कोई गलती करती हूँ तब तुम उसे सुधारने के लिए आगे आ जाते हो. मेरी गलतियों के निशान मिटाते-मिटाते तुम खुद को ही खो बैठते हो. तुम छोटे, और छोटे होते-होते अपना अस्तित्व ही खो देते हो".

इरेज़र ने कहा – "तुम सही कहती हो लेकिन मुझे उसका कोई खेद नहीं है. मेरे होने का अर्थ ही यही है! मुझे इसीलिए बनाया गया कि जब कभी तुम कुछ गलत कर बैठो तब मैं तुम्हारी सहायता करूं. मुझे पता है कि मैं एक दिन चला जाऊँगा और तुम्हारे पास मेरे जैसा कोई और आ जाएगा. मैं अपने काम से बहुत खुश हूँ. मेरी चिंता मत करो. मैं तुम्हें उदास नहीं देख सकता."

पेंसिल और इरेज़र के बीच घटा यह संवाद बहुत प्रेरक है. उन्हीं की भाँती माता-पिता इरेज़र और बच्चे पेंसिल की तरह हैं. माता-पिता अपने बच्चों की गलतियों को सुधारने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं. इस प्रक्रिया में उन्हें कभी-कभी ज़ख्म भी मिलते हैं और वे छोटे – बूढ़े होते हुए एक दिन हमेशा के लिए चले जाते हैं. बच्चों को उनकी जगह कोई और (जीवनसाथी) मिल जाता है लेकिन माता-पिता अपने बच्चों का हित देखकर हमेशा खुश ही होते हैं. वे अपने बच्चों पर कभी कोई विपदा या चिंता मंडराते नहीं देख सकते.

किताबी ज्ञान

सैंकडों साल पहले अरब में इमाम गजाली नमक एक बड़े विद्वान् और धार्मिक गुरु हुए। युवावस्था में वे एक बार दूसरे शहर की यात्रा पर निकले थे. उस ज़माने में यात्रा का कोई साधन नहीं था और डाकुओं का हमेशा भय बना रहता था. एक दिन गजाली जंगल में सुस्ताते हुए कुछ पढ़ रहे थे। उसी समय डाकुओं ने वहां धावा बोल दिया. डाकुओं ने गजाली से कहा – "तुम्हारे पास जो कुछ भी है वो हमारे हवाले कर दो, वर्ना जान से हाथ धोना पड़ेगा."

गजाली ने कहा – "मेरे पास सिर्फ कपड़े और किताबें हैं"।

डाकुओं ने कहा – "हमें कपड़े नहीं चाहिए। किताबें हम बेच देंगे". इस प्रकार डाकू गजाली का किताबों का बस्ता अपने साथ ले चले.

गजाली को अपनी किताबें छीन जाने का बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सोचा – "कभी कोई बात किताब में देखने की ज़रुरत पड़ी तो मैं क्या करूँगा?"

वे दौड़कर डाकुओं के पास पहुंचे और उनसे गिड़गिडाकर बोले – "ये किताबें मेरे बड़े काम की हैं। इनको बेचकर आपको बहुत कम पैसा मिलेगा लेकिन मेरा बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा. इन किताबों में बहुत ज्ञान समाया है. ज़रुरत पड़ने पर मैं किताब कैसे देखूँगा? दया करके मुझे मेरी किताबें लौटा दीजिये!"

डाकुओं का सरदार यह सुनकर जोरों से हंस पड़ा और किताबों का बस्ता जमीन पर फेंकते हुए बोला – "ऐसा ज्ञान किस काम का कि किताबें छिन जाएँ तो कुछ भी याद न रहे! उठाले अपना बस्ता, बड़ा ज्ञानी बना फिरता है।"

गजाली पर डाकू की बात का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा – वह ज्ञान कैसा जो किताबों के बिना शून्य हो!

इस घटना के बाद गजाली ने हर किताब में निहित ज्ञान को अपने मन-मष्तिष्क और ह्रदय में संजो लिया. कालांतर में वे बहुत बड़े इमाम और धर्मगुरु बने.

हज का पुण्य

अब्द मुबारक हज करने के लिए मक्का की यात्रा पर था। मार्ग में एक स्थान पर वह थककर सो गया और उसने स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग में था। उसने वहां दो फरिश्तों को बातचीत करते सुना:

पहले फ़रिश्ते ने दूसरे से पूछा – "इस साल कितने हज यात्री मक्का आ रहे हैं?"

"छः लाख" – दूसरे फ़रिश्ते ने जवाब दिया।

"और इनमें से कितनों को हजयात्रा का पुण्य मिलेगा?"

"किसी को भी नहीं, लेकिन बग़दाद में अली मुफीक़ नामक एक मोची है जो हज नहीं कर रहा है फ़िर भी उसे हज का पुण्य दिया जा रहा है और उसकी करुणा के कारण यात्रा करने वाले छः लाख लोग भी थोड़ा-बहुत पुण्य कमा लेंगे"। नींद खुलने पर अब्द मुबारक सपने के बारे में सोचकर अचंभित था। वह अली मुफीक़ की दूकान पर गया और उसने उसे अपना स्वप्न कह सुनाया।

"आपके स्वप्न के बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। मैंने तो बड़ी मुश्किल से हजयात्रा के लिए ३५० दीनार जमा किए थे। लेकिन जब मैं यात्रा के लिए निकल रहा था तभी मैंने देखा कि मेरे पड़ोसी दाने-दाने को तरस रहे थे इसलिए मैंने वह सारा धन उनमें बाँट दिया। अब मैं शायद कभी हज करने नहीं जा सकूँगा" – अली मुफीक़ ने कहा।

मुल्ला नसरुद्दीन : खुशबू की कीमत

राह चलते एक भिखारी को किसी ने चंद रोटियां दे दीं लेकिन साथ में खाने के लिए सब्जी नहीं दी. भिखारी एक सराय में गया और उसने सराय-मालिक से खाने के लिए थोड़ी सी सब्जी मांगी. सराय-मालिक ने उसे झिड़ककर दफा कर दिया. भिखारी बेचारा नज़र बचाकर सराय की रसोई में घुस गया. चूल्हे के ऊपर उम्दा सब्जी पक रही थी. भिखारी ने देग से उठती हुई भाप में अपनी रोटियां इस उम्मीद से लगा दीं कि सब्जी की खुशबू से कुछ जायका तो रोटियों में आ ही जायेगा.

अचानक ही सराय-मालिक रसोई में आ धमका और भिखारी का गिरेबान पकड़कर उसपर सब्जी चुराने का इल्ज़ाम लगाने लगा.

"मैंने सब्जी नहीं चुराई!" – भिखारी बोला – "मैं तो सिर्फ उसकी खुशबू ले रहा था!"

"तो फिर तुम खुशबू की कीमत चुकाओ!" – सराय-मालिक बोला.

भिखारी के पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी. सराय-मालिक उसे घसीटकर काज़ी मुल्ला नसरुद्दीन के पास ले गया.

मुल्ला ने सराय-मालिक की शिकायत और भिखारी की बात इत्मीनान से सुनी.

"तो तुम्हें अपनी सब्जी की खुशबू की कीमत चाहिए न?" – मुल्ला ने सराय-मालिक से पूछा.

"जी. आपकी बड़ी महरबानी होगी" – सराय-मालिक बोला.

"ठीक है. मैं खुद तुम्हें तुम्हारी सब्जी की खुशबू की कीमत अदा करूँगा" – मुल्ला बोला – "और मैं खुशबू की कीमत सिक्कों की खनक से चुकाऊँगा".

यह कहकर मुल्ला ने अपनी जेब से कुछ सिक्के निकाले और उन्हें हथेली में लेकर जोरों से खनकाया और उन्हें वापस अपनी जेब में रख लिया.

ठगाया-सा सराय-मालिक और हैरान-सा भिखारी, दोनों अपने-अपने रास्ते चले गए.

मुल्ला नसरुद्दीन का भाषण

एक बार शहर के लोगों ने मुल्ला नसरुद्दीन को किसी विषय पर भाषण देने के लिए आमंत्रित किया. मुल्ला जब बोलने के लिए मंच पर गया तो उसने देखा कि वहां उसे सुनने के लिए आये लोग उत्साह में नहीं दिख रहे थे.

मुल्ला ने उनसे पूछा – "क्या आप लोग जानते हैं कि मैं आपको किस विषय पर बताने जा रहा हूँ?"

श्रोताओं ने कहा – "नहीं."

मुल्ला चिढ़ते हुए बोला – "मैं उन लोगों को कुछ भी नहीं सुनाना चाहता जो ये तक नहीं जानते कि मैं किस विषय पर बात करनेवाला हूँ." – यह कहकर मुल्ला वहां से चलता बना.

भीड़ में मौजूद लोग यह सुनकर शर्मिंदा हुए और अगले हफ्ते मुल्ला को एक बार और भाषण देने के लिए बुलाया. मुल्ला ने उनसे दुबारा वही सवाल पूछा – "क्या आप लोग जानते हैं कि मैं आपको किस विषय पर बताने जा रहा हूँ?"

लोग इस बार कोई गलती नहीं करना चाहते थे. सबने एक स्वर में कहा – "हाँ."

मुल्ला फिर से चिढ़कर बोला – "यदि आप लोग इतने ही जानकार हैं तो मैं यहाँ आप सबका और अपना वक़्त बर्बाद नहीं करना चाहता." मुल्ला वापस चला गया.

लोगों ने आपस में बातचीत की और मुल्ला को तीसरी बार भाषण देने के लिए बुलाया. मुल्ला ने तीसरी बार उनसे वही सवाल पूछा. भीड़ में मौजूद लोग पहले ही तय कर चुके थे कि वे क्या जवाब देंगे. इस बार आधे लोगों ने 'हां' कहा और आधे लोगों ने 'नहीं' कहा.

मुल्ला ने उनका जवाब सुनकर कहा – "ऐसा है तो जो लोग जानते हैं वे बाकी लोगों को बता दें कि मैं किस बारे में बात करनेवाला था." यह कहकर मुल्ला अपने घर चला गया.

पटाचारा श्रावस्ती के नगरसेठ की पुत्री थी. किशोरवय होने पर वह अपने घरेलू नौकर के प्रेम में पड़ गई. जब उसके माता-पिता उसके विवाह के लिए उपयुक्त वर खोज रहे थे तब वह नौकर के साथ भाग गई.

दोनों अपरिपक्व पति-पत्नी एक छोटे से नगर में जा बसे. कुछ समय बाद पटाचारा गर्भवती हो गई. स्वयं को अकेले पाकर उसका दिल घबराने लगा और उसने पति से कहा – "हम यहाँ अकेले रह रहे हैं. मैं गर्भवती हूँ और मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता है. यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपने माता-पिता के घर चली जाऊं?"

पति पटाचारा को उसके मायके नहीं भेजना चाहता था इसलिए उसने कोई बहाना बनाकर उसका जाना स्थगित कर दिया. लेकिन पटाचारा के मन में माता-पिता के घर जाने की इच्छा बड़ी बलवती हो रही थी. एक दिन जब उसका पति काम पर गया हुआ था तब उसने पड़ोसी से कहा – "आप मेरे स्वामी को बता देना कि मैं कुछ समय के लिए अपने माता-पिता के घर जा रही हूँ." जब पति को इसका पता चला तो उसे बहुत बुरा लगा. उसे अपने ऊपर ग्लानि भी हुई कि उसके कारण ही इस कुलीन कन्या की इतनी दुर्गति हो रही है. वह उसे ढूँढने के लिए उसी मार्ग पर चल दिया. रास्ते में पटाचारा उसे मिल गई. पति ने उसे समझाबुझाकर घर वापस लिवा लिया. समय पर पटाचारा को प्रसव हुआ. सभी सुखपूर्वक रहने लगे. पटाचारा जब दूसरी बार गर्भवती हुई तब पति स्वयं उसे उसके माता-पिता के घर ले जाने के लिए तैयार हो गया. मार्ग में जोरों की आंधी-वर्षा होने लगी. पटाचारा ने पति से कहा कि वह किसी सुरक्षित स्थान की खोज करे. पति झाड़ियों से होकर गुज़र रहा था तभी उसे एक विषधर सांप ने काट लिया और वह तत्क्षण मृत्यु को प्राप्त हो गया.

पटाचारा अपने पति की प्रतीक्षा करती रही और ऐसे में ही उसे प्रसव हो गया. थोड़ी शक्ति जुटाकर उसने दोनों बच्चों को साथ लिया और पति को खोजने निकल पड़ी.

जब उसे पति मृत मिला तो वह फूट-फूटकर रोने लगी – "हाय! मेरे कारण ही मेरे पति की मृत्यु हो गई!"

अब अपने माता पिता के सिवा उसका कोई न था. वह उनके नगर की और बढ़ चली. रास्ते में नदी पड़ती थी. उसने देखा कि दोनों बच्चों को साथ लेकर नदी पार करना कठिन था इसलिए बड़े बच्चे को उसने एक किनारे पर बिठा दिया और दूसरे को छाती से चिपका कर दूसरे किनारे को बढ़ चली. वहां पहुंचकर उसने छोटे बच्चे को कपड़े में लपेटकर झाडियों में रख दिया और बड़े बच्चे को लेने के लिए वापस नदी में उतर गई. नदी पार करते समय उसकी आँखें छोटे बच्चे पर ही लगी हुई थीं. उसने देखा कि एक बड़ा गिद्ध बच्चे पर झपटकर उसे ले जाने की चेष्टा कर रहा है. वह चीखी-चिल्लाई, लेकिन कुछ नहीं हुआ. दूसरे किनारे पर बैठे बच्चे ने जब अपनी माँ की चीखपुकार सुनी तो उसे लगा कि माँ उसे बुला रही है. वह झटपट पानी में उतर गया और तेज बहाव में बह गया. छोटे बच्चे को गिद्ध ले उड़ा और बड़ा नदी में बह गया! उसका छोटा सा परिवार पूरा नष्ट हो गया. वह विलाप करती हुई अपने पिता के घर को चल दी. रास्ते में उसे अपने नगर का एक यात्री मिल गया जिसने उसे बताया कि नगरसेठ का परिवार अर्थात उसके माता-पिता और सभी भाई-बहन कुछ समय पहले घर में आग लग जाने के कारण मर गए.

यह सुनते ही पटाचारा पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा. उसे तनमन की कोई सुध ना रही. वह पागल होकर निर्वस्त्र घूमने लगी. उसके मुख से ये ही शब्द निकलते – “पति मर गया. बड़ा बेटा डूब गया. छोटे को गिद्ध खा गया! माता-पिता और भाई-बहनों को चिता भी नसीब नहीं हुई!”

ऐसे ही विलाप करती निर्वस्त्र घूमती-फिरती पटाचारा को सभी अपमानित और लांछित करके यहाँ से वहां भगा देते थे.

जेतवन में भगवान बुद्ध धर्मोपदेश दे रहे थे. पटाचारा अनायास ही वहां आ गई. उपस्थितों ने कहा – “अरे, ये तो पागल है! इसे यहाँ से भगाओ!” बुद्ध ने उन्हें रोकते हुए कहा – “इसे मत रोको. मेरे पास आने दो”. पटाचारा जब बुद्ध के कुछ समीप आई तो बुद्ध ने उससे कहा – “बेटी, अपनी चेतना को संभाल”. भगवन को अपने समक्ष पाकर पटाचारा को कुछ होश आया और अपनी नग्नता का बोध हो आया. किसी ने उसे चादर से ढांक दिया. वह फूट-फूटकर रोने लगी – “भगवन, मेरे पति को सांप ने डस लिया और छोटे-छोटे बच्चे मेरी आँखों के सामने मारे गए. मेरे माता-पिता, बंधु-बांधव सभी जलकर मर गए. मेरा अब कोई नहीं है. मेरी रक्षा करो”.

बुद्ध ने उससे कहा – “दुखी मत हो. अब तुम मेरे पास आ गई हो. जिन परिजनों की मृत्यु के लिए तुम आंसू बहा रही हो, ऐसे ही अनंत आंसू तुम जन्म-जन्मांतरों से बहाती आ रही हो. उनसे भरने के लिए तो महासमुद्र भी छोटे पड़ जायेंगे. तेरी रक्षा कोई नहीं कर सकता. जब मृत्यु आती है तो कोई परिजन आदि काम नहीं आते”.

यह सुनकर पटाचारा का शोक कुछ कम हुआ. उसने बुद्ध से साधना की अनुमति माँगी. बुद्ध ने उसे अपने संघ में शरण दे दी. धर्म के परम स्रोत के इतने समीप रहकर पटाचारा का दुख जाता रहा. वह नित्य ध्यान व ज्ञान की साधना में निपुण हो गई.

एक दिन स्नान करते समय उसने देखा कि देह पर पहले डाला गया पानी कुछ दूर जाकर सूख गया, फिर दूसरी बार डाला गया पानी थोड़ी और दूर जाकर सूख गया, और तीसरी बार डाला गया पानी उससे भी आगे जाकर सूख गया. इस अत्यंत साधारण घटना में पटाचारा को समाधि का सूत्र मिल गया. “पहली बार उड़ेले गये पानी के समान कुछ जीव अल्पायु में ही मर जाते हैं, दूसरी बार उड़ेले गये पानी के समान कुछ जीव मध्यम वयता में चल बसते हैं, और तीसरी बार उड़ेले गये पानी के जैसे कुछ जीव अंतिम वयस में मरते हैं. सभी मरते हैं. सभी अनित्य हैं”.

ऐसे में पटाचारा को यह भान हुआ जैसे अनंत करुणावान प्रभु बुद्ध उससे कह रहे हैं – “हां, पटाचारे, समस्त प्राणी मरणधर्मा हैं”

इस प्रकार पटाचारा उन बौद्ध साधिकाओं में गिनी गई जिनको निःप्रयास ही एक जीवनकाल में ही निर्वाण प्राप्त हो गया.